योगवाणी

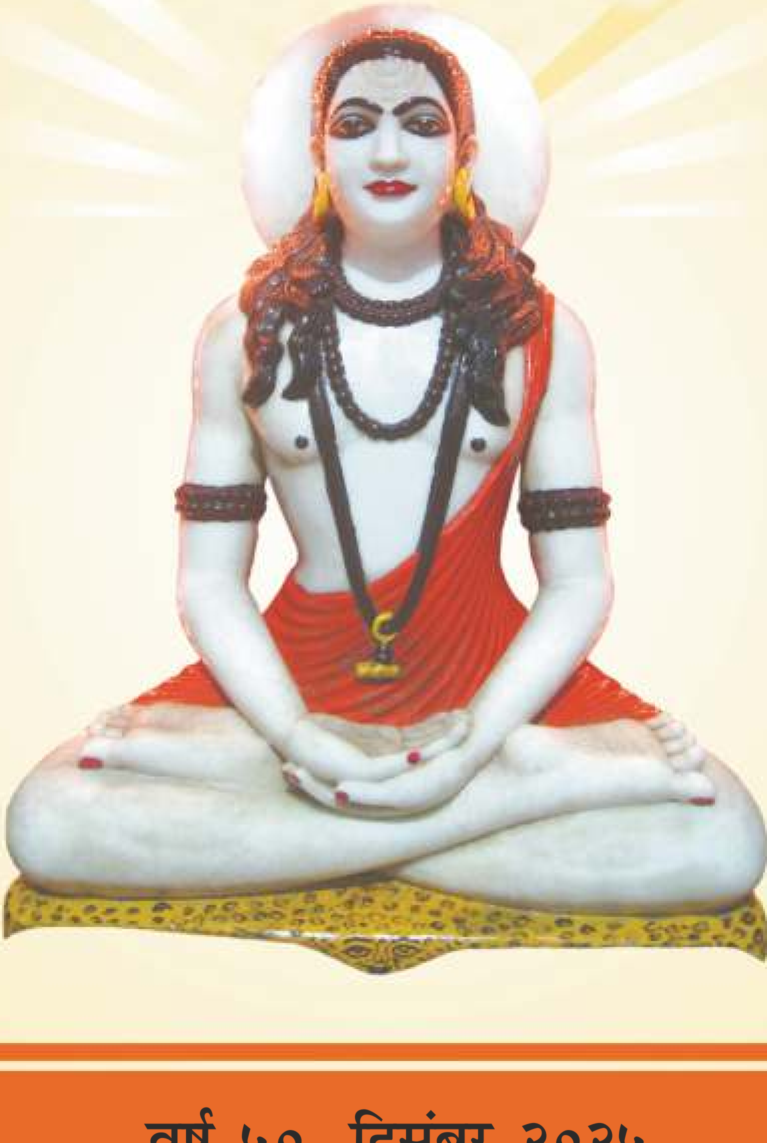

वर्ष ५०, दिसंबर २०२५

योगवाणी

वर्ष ५०, दिसंबर, २०२५

आर.एन.आई. २९०७५/७६

"मानव जीवन में योग की साधना की परम उपयोगिता सहज सिद्ध है। योग ही एक ऐसा निरपेक्ष साधन मार्ग है जिसके आश्रय में सर्व सामान्य को जीवन की व्यवहारिकता और सच्चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान सुलभ होता है"

राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

वार्षिक सदस्यता : १२५/-
द्विवार्षिक सदस्यता : २५०/-
पंचवार्षिक सदस्यता : ६००/-
आजीवन सदस्यता : १२००/-
एक प्रति का मूल्य : १५/-

मुद्रक:
मोती पेपर कनवर्टर्स
डी-4/1, सेक्टर 13
गीडा, गोरखपुर
दूरभाष : 0551-2580093

विषयानुक्रम

	पृष्ठ
जीवनामृत	
श्रीशिवगोरक्षस्तुतिः	०२
योगामृत	०३
गोरखवाणी	०४
राशियों का मासफल	०५
नाथपन्थ एवं दर्शन	
अजपा जप : एक दृष्टि - -योगी आदित्यनाथ	०७
राजयोग- सुभाष विद्यालंकार	१४
सिद्धसिद्धान्तपद्धति - रामलाल श्रीवास्तव	२१
धर्म, संस्कृति एवं अध्यात्म	
सनातन धर्म में देवप्रतिमा पूजन - डॉ० रंगनाथ त्रिपाठी	२६
ताम्बूल की उत्पत्ति और उसके उपयोग से राजा दम्भ का शक्तिहीन हो जाना -आचार्य नवनीत	३०
चतुर्थ आवरण	
तुलसी एक जीवनदायक औषधि- - डॉ० कमल प्रकाश अग्रवाल	

॥ ॐ नमो भगवते गोरक्षनाथाय ॥

योगवाणी

(धर्म-संस्कृति, अध्यात्म एवं योग प्रधान पत्रिका)

संस्थापक-सम्पादक

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ

प्रधान सम्पादक

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ. प्रदीप कुमार राव

सम्पादक

डॉ. प्रांगेश कुमार मिश्र

प्रकाशक

श्री गोरखनाथ मन्दिर

गोरखपुर - २७३०१५

web: www.gorakhnathmandir.in

E-mail: gorakhnathmandir@yahoo.com

दूरभाष : (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४

॥ श्रीशिवगोरक्षस्तुतिः ॥

प्रातः स्मरणम्

प्रातः स्मरामि परमेश्वरमादिनाथं
मत्स्येन्द्रनाथ-जलधारि-पदारविन्दम्।
गोरक्षनाथगुरुदेवमुखारविन्दम्
गीर्वाणवाचमनिशं गणराज - रामौ ॥१॥

प्रातः स्मरामि शशिकान्त-शिलातलस्थं
सिद्धासनं सकलसिद्धसमाजजुष्टम्।
उद्यद्दिनेश-किरणारूणजाटजूटं
गोरक्षमक्षयमखण्डमवेद्यमाद्यम् ॥२॥

प्रातर्भजामि भुजगेश्वर-यज्ञसूत्रं
तापत्रय-त्रिविध-पापहरं त्रिनेत्रम्।
सिद्धासुरोरग-नरामर-वन्द्य-पादं
गोरक्षमक्षरमनादिमनन्तमीड्यम् ॥३॥

प्रातर्नमामि निगमागम-गम्यमेकं
भूभूप-भूसूर-हिताय कृतावतारम् ।
शान्तं शशाङ्कदलकोमल-कान्तकायं
मायापतिं पतित-पावनमप्रमेयम् ॥४॥

■

योगामृत

गोरक्ष उवाच :-

स्वामीजी ! दिव्य दृष्टि कैसे होइबा, कैसे होईबा ज्ञान विज्ञान ।
गुरू शिष्य काया के रहै, कैसे होईबा पार ॥६९॥

भावार्थ- हे गुरु जी! दिव्य दृष्टि कैसे प्राप्त होती है ? परमेश्वर का विज्ञान-ज्ञान कैसे प्राप्त होता है और गुरु -शिष्य के कितने रूप में रहे। भव-सागर से पार कैसे उतरना होता है।

मत्स्येन्द्र उवाच :-

अवधू ! दृष्टिते दिव्य दृष्टि होईबा, ज्ञानते विज्ञान होइबा।
गुरू शिष्य की एकै काया, परचा होई तो बहुरि न आया!॥७०॥

भावार्थ-हे शिष्य ! त्राटक दृष्टिभेदन की साधना से दूरदर्शिता या पारदर्शिता को दिव्य दृष्टि होती है, अध्यात्मज्ञान से ही ईश-विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान का बोध होता है, गुरु और शिष्य का भौतिक शरीर दो है किंतु शब्द-आत्म एक है और भव सिंधु पार होने को बहुरि जन्म मूल अज्ञान मूल वासना को करना चाहिये।

गोरक्ष उवाच :-

गुरूजी ! कहाँ ते उजन्त सांस उसास ? कहाँ परमहंस वासं ?
कौन शून्य मन स्थिर ह्वै रहे, सतगुरू होय सो बुझाय कहे ! ॥७१॥

भावार्थ- हे गुरुजी ! श्वासोश्वास कहां से उठता है ? जीवात्मा का निवास कहां है? मन स्थिर कैसे होता है ?

मत्स्येन्द्र उवाच :-

अवधू ! अरधते उठत सांस उसासं, उरधे परमहंस का वास ।
सहज शून्य मनस्थिर ह्वै रहे, ऐसा विचार मत्स्येन्द्र कहे ॥७२॥

भावार्थ- हे साधक ! नाभी स्थान से उठता है, दशवें द्वार ब्रह्मरंध्र से जीवात्मा का आवास है। साधना से मन स्थित एकान्त रहता है।

(गोरक्ष-मत्स्येन्द्र संवाद)

■

गोरखवाणी

छाँटै तजौ गुरु छाँटै तजौ-तजौ लोभ मोह माया।
आत्मां परचौ राषौ गुरुदेव सुंदर काया ।।टेक।।
कान्हीं पाव भेटीला गुरु, विद्यानग्र सैं।
ताथैं मैं पाइला गुरु, तुम्हारा उपदेसैं ।।१।।
एतैं कछू कथीला गुरु, सबैं भैला भोले।
सर्व रस बोईसा गुरु बाघंनी के षोलै ।।२।।
नाचत गोरषनाथ धुंधरी चें घातैं।
सबै कमाई षोई गुरु बाघनी चें राचैं ।।३।।
रस-कुस बहि गईला, रहि गई छोई ।
भणत मछिंद्रनाथ पूता, जोग न होई ।। ४ ।।
रस-कुस बहि गईला रहि गईला सारं ।
बदंत गोरषनाथ गुर जोग अपारं ।। ५ ।।
आदिनाथ नाती मछिंद्रनाथ पूता।
षटपदी भणींलै गोरष अवधूता ।। ६ ।।

हे योगींद्र मत्स्येंद्रनाथ ! आप महायोगज्ञान के स्वामी हैं। आप सिद्धमत,नाथयोग के सद्‌गुरु हैं। आप लोभ, मोह और माया को पृथक्कर (छाँट- छाँटकर, अलग कर) इनका त्याग कर दीजिए। आप आत्मा के साम्राज्य के अधिपति हैं। आत्मज्ञान-महायोगज्ञान में स्वरूपस्थ हो जाइए, आप आत्मा के योगी हैं, गुरुपद पर प्रतिष्ठित योगेश्वर हैं। विद्यानगर (विजयनगर) के योगिराजेंद्र सम्मान्य कृष्णपाद (कान्हीपांव - कानिपा) से मुझे यह उपदेश (संदेश) मिला कि आपने कामरूप के रमणीराज्य में योगिनीकौलमत की साधना में आसक्त होकर सिद्धामृत ज्ञान का विस्मरण कर दिया है। यह निर्विवाद है कि योगज्ञान से आप विमुख नहीं हो सकते हैं। आप को कामिनियों के सौंदर्य ने भ्रमित मात्र कर दिया और आप को योगज्ञान के शुद्ध स्वरूप में भ्रम सा हो गया है। हे गुरुदेव ! आपने माया (बाँधनी, बाघनी) को क्रोड़ (पोलै-गोद) में आलिंगित कर अमृतरस नष्ट कर दिया है। आपने माया नर्तकी के नृत्य पर उसकी पुर ध्वनि से मूर्च्छित होकर उसके राग में बंधन स्वीकार कर लिया और इस तरह महायोगज्ञान की साधना की सिद्धिरूपी कमाई (संपत्ति) खो दी है। आपके शरीर से रस (वीर्य) अधोगामी होकर रमणी आलिंगन से बाहर निकल गया। केवल निस्सार तत्त्व ही शेष है। मैं आपका शिष्य (मछिंद्रनाथपूता, पुत्र) कहता हूँ कि योग की साधना की शक्ति आप में अब नहीं रह गई। वीर्य के अधोगामी हो जाने पर भी आप में आत्मामृत सहस्रार के चंद्रमंडल से द्रवित अमृतरस सुरक्षित हैं। यह अपार अगम महायोगतत्त्व है। मैं अवधूत गोरखनाथ योगी, इस षट्‌पदी में सिद्धामृतमार्ग अथवा नाथयोगमत के अमृतत्त्व का प्रतिपादन करता हूँ।

राशियों का मासफल

सोमवार 01-12-2025 से 31-12-2025 बुधवार तक

*डॉ0 दिग्विजय शुक्ल

मेषः परिवार के प्रति ध्यान देना आवश्यक होगा। सन्तान के प्रति चिन्ता उत्पन्न हो सकती है। व्यापार में सफलता मिलेगी। आर्थिक विपन्नता दूर होगी परिजनों का सहयोग मिलेगा। विद्या में अच्छी सफलता मिलेगी। धर्म से सजग रहना होगा। अचानक भ्रमण करने का अवसर मिलेगा।

वृषभः परिवार में मंगल कार्य करने का योग बनेगा। व्यवसाय में समुन्नति के योग बनेंगे। दूरस्थ यात्रा करने का योग उत्पन्न होगा। शिक्षा से सम्बंधित कार्यों में सफलता मिलेगी। जोखिम भरे कार्यो में सफलता का योग बनेगा । परिवार में प्रेम का माहौल उत्पन्न होगा।

मिथुनः आपको व्यापार में विशेष ध्यान देना होगा। आर्थिक स्थिति मजबूत होगी। सन्तान के उत्थान का योग बनेगा। मित्रगणों का सहयोग मिलेगा जिससे मन हर्षित होगा। वाणी में संयम रखना होगा। प्रतियोगी परीक्षाओं में अथक परिश्रम करना होगा। धर्म के प्रति जागरुक रहें।

कर्कः बहुत ही सोच-विचार करके वाणी का प्रयोग करेंगे। वाणी की मधुरता ही शोभा है जिससे परिवार में सम्मान मिलेगा। आर्थिक तंगी दूर होगी। पत्नी का स्नेह एवं प्रेम मिलेगा। सन्तान उन्नति का योग बनेगा। धार्मिक यात्रा करने का मार्ग बनेगा।

सिंहः शिक्षा के प्रति अभिरुचि उत्पन्न होगी। व्यवसायिक कार्यों में कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। परिवार में हर्षोल्लास की स्थिति बनेगी। सन्तान के समुन्नति के मार्ग प्रशस्त होंगे। आर्थिक बाधा दूर होगी। कटु आलोचना करना श्रेष्ठ कर नहीं होगा।

कन्याः मानसिक सन्तुलन बनाने की जरूरत है। क्रोध हानिकार सिद्ध होना। आर्थिक रूप से मजबूत होंगे। कार्मिक क्षेत्रों में अथक परिश्रम करना होगा। प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता मिलेगी। सन्तान सुख का लाभ मिलेगा। परिवार के प्रति विशेष ध्यान देना होगा।

तुलाः व्यावसायिक कार्यों में चढ़ाव उतराव की स्थिति बनेगी। कार्मिक क्षेत्र में परिवर्तन हो सकता है। मंगल कारक योग उत्पन होगा। धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न होगी। धन का लाभ अधिक परिश्रम से मिलेगा। शिक्षा में जागरुक रहने की आवश्यकता है।

वृश्चिकः आपको पत्नी पक्ष से परेशानी हो सकती है जिससे मन अशान्त होगा। परिवार में सुखद समाचार मिलेगा। धर्म कार्य करने का अवसर मिलेगा। सन्तान की सम्मुन्नति के मार्ग

अध्यक्ष ज्योतिष विभाग, श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ गोरखपुर

बनेंगे। धन की चिन्ता दूर होगी। जोखिम भरे कार्यों में सफलता मिलेगी। अन्यत्र भ्रमण का संयोग बनेगा।

धनु: आपकी मानसिक चिन्ता दूर होगी। आर्थिक लाभ के संसाधन उत्पन होंगे। स्वजनों का सहयोग मिलेगा। परिवार में सौहार्दपूर्ण वातावरण बनेगा। व्यापार में लाभ मिलेगा। विद्या में विशेष ध्यान देना होगा।

मकर: आपको आत्म विश्वास पैदा करना होगा। पारिवारिक मतभिन्नता दूर होगी। आर्थिक अवरोध समाप्त होंगे। धर्म में लगाव उत्पन्न होगा। पुत्र के प्रति चिन्ता उत्पन्न होगी। व्यवसाय में विशेष लाभ मिलेगा। बच्चों को विद्या में ध्यान देना अति आवश्यक होगा।

कुम्भ: पारिवारिक सुखों के प्रति चिन्ता करनी होगी। शैक्षिक कार्यों में सफलता मिलेगी। आर्थिक लाभ के योग उत्पन्न होंगे। साथियों का सहयोग मिलेगा। व्यापार में अधिक परिश्रम से थोड़ा लाभ मिलेगा। सन्तान लाभ का सुखद समाचार मिलेगा। शिक्षा में ध्यान रखने की आवश्यकता है।

मीन: दाम्पत्य सुख में वृद्धि होगी। शिक्षा के क्षेत्र में सफलता मिलेगी। व्यापार में ध्यान देंगे तो लाभ मिलेगा। कार्मिक क्षेत्र में उन्नति के अवसर बनेंगे । परिवार में आर्थिक स्थिति मजबूत होगी। प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता मिलेगी। व्यवसाय में सजग रहने की आवश्यकता है।

■

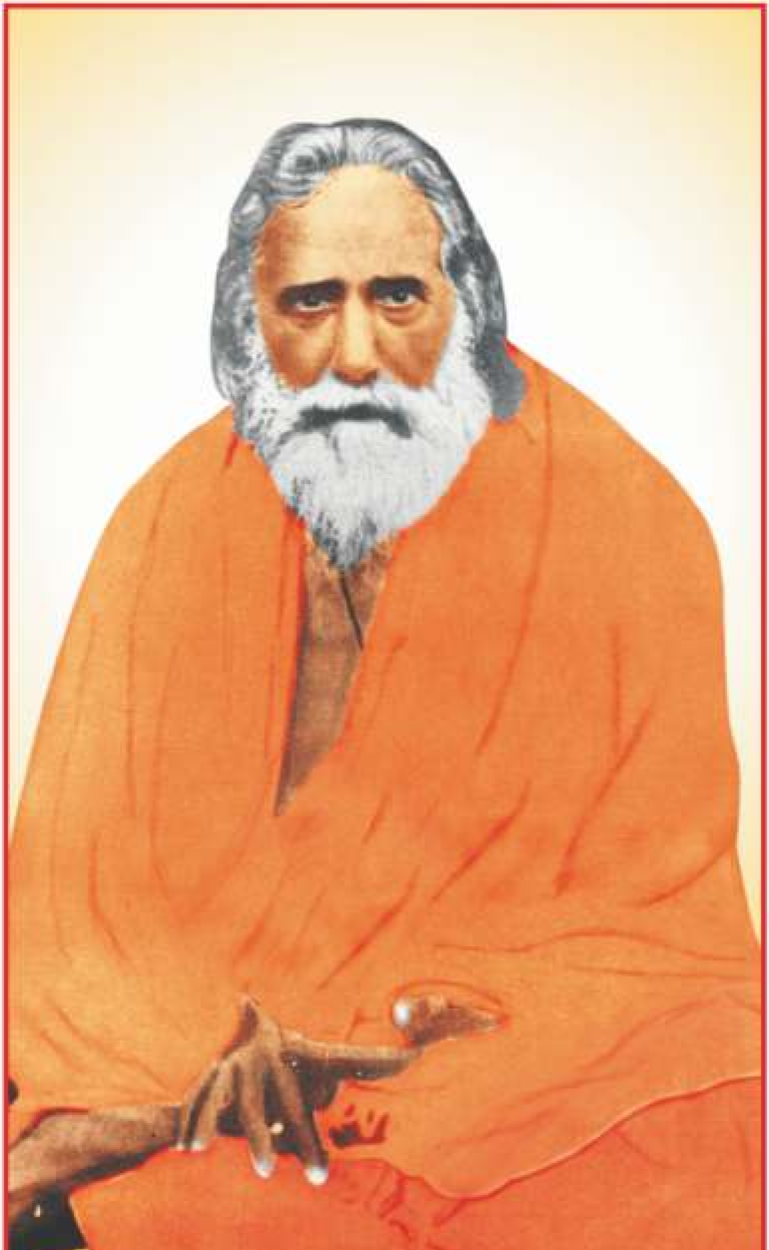

योगिराज बाबा गम्भीरनाथ

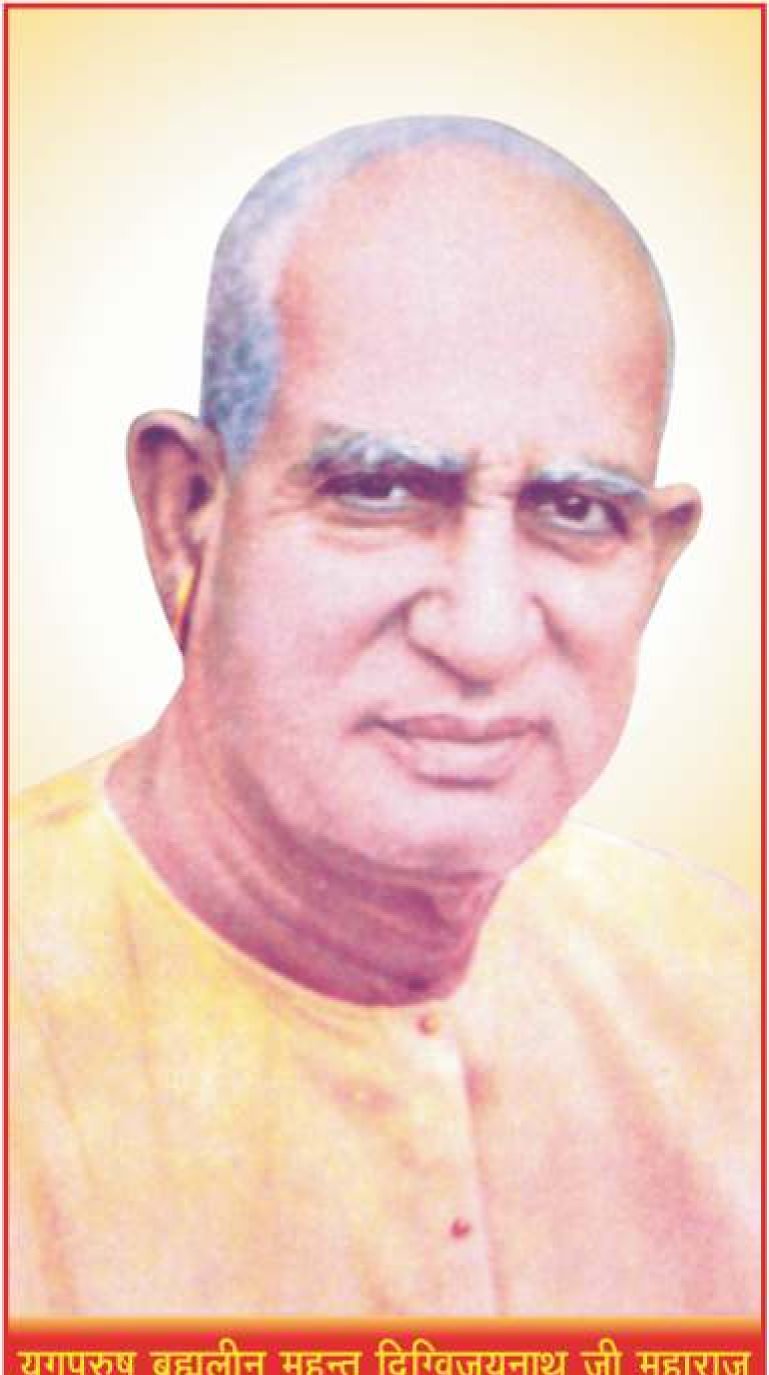

युगपुरुष ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज

अजपा जप : एक दृष्टि -

*योगी आदित्यनाथ

भारतीय आध्यात्मिक साधना में जप का प्राचीन काल से ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। है। इसका विकास समय-समय पर भारत के महान् संतों और योगियों ने विभिन्न युगों में अपने अनुभवों से किया है। जप उतना ही प्राचीन है, जितना भारतीय संस्कृति। उपनिषदों तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में इनका विवरण किसी-न-किसी रूप में प्राप्त होता है। जप कोई भी हो, नित्य दोषों को दूर कर चित्त शुद्ध करता है। जप अनेक प्रकार के होते हैं। मुख्य जप इस प्रकार हैं-

नित्य जप-गुरु मंत्र का प्रतिदिन प्रातः सायं जप करना नित्य जप कहलाता है।

वैखरी जप-मंत्रों का जोर से उच्चारण करते हुए किया जाने वाला जप 'वैखरी जप' कहलाता है।

उपांशु जप-मंत्रों को बिना जोर से बोले मुँह के अंदर ही जप करना 'उपांशु जप' कहलाता है।

मानस जप- मन से मंत्रों का उच्चारण करना 'मानस जप' कहलाता है।

अजपा जप- श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया पर अपनी चेतना को केंद्रित करके किया जाने वाला जप 'अजपा-जप' कहलाता है। यह जप सबसे सरल और उच्च कोटि का माना गया है।

योग में चित्त शुद्धि की बहुत सी साधनाएँ हैं। परंतु हर साधना का प्रभाव अलग-अलग होता है. अर्थात् कुछ साधनाएँ ऐसी हैं, जिन्हें साधारण व्यक्ति नहीं सह सकता, इसलिए प्रत्येक को या चाहे जिसको शक्तिपात नहीं कराया जा सकता, क्योंकि मनुष्य की प्रकृति तीन प्रकार की होती हैं- सात्त्विक, राजसिक और तामसिक।

इन तीनों प्रकृति के मनुष्यों के लिए आध्यात्मिक क्षेत्र में साधनाएँ भी अलग-अलग हैं। यदि तामसिक प्रकृति के मनुष्य को सात्त्विक प्रकृति की साधना करवाई जाएगी या सात्त्विक प्रकृति के मनुष्य को तामसिक प्रकृति की साधनाएँ करवाई जाएँ तो वह निश्चित पागल या रोगी हो जाएगा। परंतु अजपा एक ऐसी साधना है, जो हर प्रकृति के व्यक्ति के लिए उपयुक्त है। यह जप अपने आप में एक पूर्ण साधना है। 'गोरक्षशतक' में महायोगी गुरु गोरक्षनाथजी ने स्वयं कहा है कि-

हकारेण बर्हिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।
हंसहंसेत्यमुं मंत्रं जीवो जपति सर्वदा।।

---

*गोरक्षपीठाधीश्वर एवं मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी।
अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।
कुण्डलिन्यां समुद्भूता गायत्री प्राणधारिणी।
प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स योगवित्॥

अर्थात् प्राण–वायु के हकार की ध्वनि से बाहर जाने पर और सकार की ध्वनि से भीतर आने पर हंस–हंस मंत्र की उत्पत्ति शरीर में 21600 बार होती है। इस हंस मंत्र से 'सोऽहं' शब्द की उत्पत्ति होती है। हंस मंत्र का जप ही अजपा गायत्री है। यह योगियों को मोक्ष प्रदान करती है। इसके संकल्प मात्र से उसके समस्त पाप नष्ट होते हैं। कुंडलिनी से उत्पन्न यह गायत्री, प्राण–विद्या महाविद्या है। 'गोरखबानी' में महायोगी कहते हैं–

अजपा जपै सुनि मन धरै, पांचो इन्द्री निग्रह करे।
ब्रह्म अगनि में होमै काया, तास महादेव बन्दे पाया ॥

अर्थात् जो योग साधक अजपा जप करता है, जिसकी चित्तवृत्ति तेलधारावत् अनवरत 'ऊँ' 'सोऽहं' तथा परमात्मा के इष्ट नाम मंत्र के जप में लगी रहती है, जिसका मन ब्रह्मरंध्र (शून्यवाद) में रमण करता है, अर्थात् ऊर्ध्वमुखी रहता है, जिसके इंद्रिय समूह चंचलता को छोड़कर स्ववश रहते हैं, जो विनश्वर शरीर को ब्रह्मानुभूति रूपी अग्नि में परिशुद्ध कर देता है, उस योगी की वंदना साक्षात् भगवान् शिव करते हैं।

वस्तुतः जब जीव श्वास लेता है, तब 'स' शब्द के साथ प्राणवायु पेट के अंदर जाती है और 'हं' शब्द के साथ बाहर निकलती है। एक व्यक्ति साधारण स्वरूप स्थिति में स्वभावतः प्रत्येक चौबीस घंटे के भीतर 21600 बार श्वास लेता हैं। जैसा कि 'ब्रह्मविद्योपनिषद्' में कहा गया है–

सहस्रमेकमयुतं षट् शतं चैव सर्वदा।
उच्चरन्पतितो हंसः सोऽहमित्यभिधीयते॥

अर्थात् नित्य प्रति इक्कीस हजार छह सौ की संख्या में 'हंस' का जप करनेवाला साधक 'सोऽहं' रूप हो जाता है।

एक आध्यात्मिक जिज्ञासु के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी प्रत्येक श्वास पर ध्यान दे और उसके महत्त्व को समझे। श्वास प्रक्रिया के यमित–नियमित–दीर्घकालिक–अल्पकालिक करने के लिए किसी बाहरी प्रयत्न पर नहीं, बल्कि श्वास प्रक्रिया पर ध्यान देना होता है। जिज्ञासु की कोशिश होनी चाहिए कि उसकी कोई भी श्वास कम–से–कम जाग्रत् अवस्था में व्यर्थ न होने पाए। यही वह सत्य है, जिसे प्रत्येक श्वास अव्यक्त रूप में उसके हृदय में ध्वनित करती है। यह 'अजपा–जप' है। महायोगी गोरखनाथजी कहते हैं कि अजपा की तुलना में कोई भी अन्य विद्या, कोई भी अन्य जप और कोई भी ज्ञान नहीं रखा जा सकता है। जैसा कि

एक संत ने कहा भी है कि–

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोऽहं-सोऽहं सुरता गाई।
छह सौ सहस्र इकिसौ जाप, अनहद उपजै आपहि आप॥

अजपा के नियमित अभ्यास से श्वास प्रक्रिया सामान्य होती है, जो समाधि अवस्था में पहुँचाने में सहायक होती है। हमारे इस भौतिक शरीर में दस प्रधान वायु हैं। हृदय देश में प्राण वायु उच्छवास और नि:श्वास का संचालन करती है। यही प्राण वायु हकार की ध्वनि के साथ बाहर तथा सकार की ध्वनि के साथ भीतर आती है। गुदा-प्रदेश में अपान वायु रेचक, पूरक, कुंभक की सामर्थ्य से युक्त होती है। नाभिप्रदेश में समानवायु रहती है। यह जठराग्नि को दीप्त करती है और भोजन के रूप में ग्रहण किए गए पदार्थों को रसयुक्त करती तथा पचाती है। व्यानवायु शरीर में व्याप्त नाडियों का शोधन कर कांति और तेज को बढाती है। कंठ में उदान वायु रहती है। इसका कार्य वमन, भाषण और शरीर से प्राण का उत्क्रमण है। प्राणवायु शरीर में व्याप्त रहकर अंग-प्रत्यंग के संचालन में सहायता करती है। कूर्म वायु का कार्य आँखों की पलकों को खोलना और बंद करना होता है। कृकल वायु का कार्य है डकार उत्पन्न करना तथा मूत्र बढ़ाना। देवदत्त वायु जंभाई लेने में सहायता करती है तथा धनंजय वायु समस्त शरीर में व्याप्त रहकर अव्यक्त नाद उत्पन्न करती है–

'सिद्ध-सिद्धांत-पद्धति' के अनुसार –

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते ।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते॥

हमारी दाहिनी नासिका से होकर जानेवाली नाड़ी सूर्य अथवा पिंगला है तथा बाईं नासिका से होकर जानेवाली नाड़ी चंद्र अथवा इड़ा है। स्वर विज्ञान के अनुसार जब इड़ा-पिंगला दोनों नाड़ियाँ समान रूप से चलती हैं तो वह समय सभी प्रकार की आध्यात्मिक साधना अथवा शुभ कार्य के लिए उत्तम होता है।

अजपा में सर्वप्रथम आने-जाने वाली श्वास के प्रति चैतन्य रहना चाहिए। श्वास सहज नहीं रहेगी। स्वाभाविक श्वास रात्रि में भी रहती है। परंतु वह अजपा नहीं है। सचेतन मन से आने-जाने वाली श्वास को देखना होगा कि श्वास कहाँ तक जा रही है। जब श्वास लेते हैं तो वायु नाभि तक जाती है तथा छोड़ते समय नाभि से आती है। इसे करने के लिए किसी आरामदायक आसन में बैठते हैं। अंगों को ढ़ीला छोड़कर गहरी श्वास लेते हैं। भीतर जानेवाली श्वास के साथ 'सो' और आनेवाली श्वास के साथ 'हं' जोड़ते हैं। 'सो' और 'हं' के बीच मानसिक रूप से कोई अंतर न आए। 'हं' के बाद कुछ आराम की स्थिति में आते हैं। पुनः 'सो' के साथ श्वास लेते हैं तथा 'हं' के साथ छोड़ते हैं। यह 'सोऽहं' की एक आवृत्ति है। कुछ समय पश्चात् अजपा बंद करिए और शून्य में अपनी चेतना को ले जाकर चक्र पर ध्यान करिए, जो भी

आए, उन्हें हटाकर केवल शून्य का ध्यान रखिए, कुछ देर बाद पुनः अजपा प्रारंभ कीजिए। 'श्रीमद्‍भगवद्' गीता में भी अजपा के संदर्भ में स्पष्ट कहा गया है–

अपाने जुह्वते प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रूद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ।
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥

अर्थात् कुछ साधक प्राण को अपान में मिलाते हैं और अन्य अपान को प्राण में, दूसरे प्राण को प्राण से ही मेल करते हैं। अंदर जानेवाली श्वास प्राण है तथा बाहर आनेवाली अपान। 'सो' प्राण का प्रतिनिधित्व करती है और 'हं' अपान का। सो को 'हं' से जोडते हैं, जिससे हंसो बनता है। कुछ ऐसे भी साधक हैं, जो प्राण का मिलन प्राण से कराते हैं।

अजपा के सतत अभ्यास से आत्मा ब्रह्म की एकता 'जीव' और 'शिव' की एकता का साथ आध्यात्मिक क्षेत्र में अनुभूत होता है। सभी प्रकार की विषय कामना, घृणा, ईर्ष्या, भय, चिंता, अन्यमनस्कता दूर हो जाती है और हृदय में आत्मपूर्णता की चेतना के आनंद का अनुभव होता है। अजपा के अभ्यास की उच्चतर स्थिति में श्वास के ऊपर अधिक ध्यान देना आवश्यक नहीं रह जाता। आत्मा और ब्रह्म की आनंदमयी एकता की भावना में श्वास पर केंद्रित ध्यान क्रमशः लय हो जाता है। अहं की चेतना समाप्त हो जाती है और केवल एक ज्योति से प्रकाशित अभेदात्मक आनंदमयी चेतना रह जाती है। इस प्रकार अजपा के अभ्यास से समाधि की प्राप्ति हो जाती है। 'गोरखबानी' में गोरखनाथजी कहते हैं–

पवनां रे तू जासी कौने बाटी।
जोगी अजपा जपै त्रिवेणी के घाटी॥
चंद गोग टीका करिलै, सूर करिले बाटी।
मूंनी राजा लुगा धोवै, गंग जमुन की घाटी॥

अर्थात् हे पवन (प्राण) तुम किस रास्ते जाओगे? त्रिवेणी (त्रिकुटी) में योगी अजपा जप कर रहा है। यह मार्ग बंद है। चंद्र और सूर्य नाड़ी से प्राण अवरुद्ध कर सुषुम्णा में प्राण को प्रवाहित कर इस शरीर रूपी कपड़े को धोता जा।

अजपा के सतत अभ्यास से साधक उच्चतर स्थिति में पहुँचकर सच्चिदानंदमय हो जाता है। विभिन्न चरणों में इसका अभ्यास करके साधक वास्तविक शांति प्राप्त कर सकता है। अजपा का अभ्यास कुर्सी पर, जमीन पर या किसी आसन (पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन) में किया जा सकता है। अजपा के समय ध्यान के केंद्र पर मस्तिष्क को एकाग्र करना चाहिए। यह ध्यान का केंद्र आज्ञाचक्र, भ्रूमध्य, अनाहत चक्र या शरीर का कोई अन्य केंद्र हो सकता है। अजपा में श्वास गहरी तथा आराम

दायक होनी चाहिए। विभिन्न चरणों में सफलतापूर्वक अजपा अभ्यास इस प्रकार किया जा सकता है।

प्रथम चरण–

1. किसी आरामदायक आसन में बैठकर आँखें बंद करके पूर्णतः शांति, सुख और आराम का अनुभव कीजिए तथा पेट के भीतर तथा बाहर जानेवाली श्वास पर अपने को केंद्रित करें।

2. गहरी एवं आरामपूर्वक श्वास लेकर अनुभव करिए कि श्वास नाभि तक जाती है और बाहर जाने वाली श्वास नाभि से आती है।

3. अंदर जाने वाली श्वास में 'सो' और बाहर जानेवाली श्वास में 'हं' को जोड़िए। इस प्रकार श्वास–प्रश्वास के साथ 'सोऽहं' बनता है।

4. एक आवृत्ति के बाद मानसिक शून्यता की स्थिति में आइए और अपनी चेतना को आज्ञा (भ्रूमध्य) अथवा अनाहतचक्र (हृदयमध्य) पर एकाग्र करिए।

5.पुनः आने–जाने वाली श्वास के साथ 'सोऽहं' का अभ्यास करिए। कुछ दिनों के अभ्यास के बाद पूर्णता प्राप्त होने पर द्वितीय चरण में अभ्यास प्रारंभ करें।

द्वितीय चरण –

1. प्रथम चरण का अभ्यास करते समय पहले श्वास लेते समय 'सो' तथा बाहर निकालते समय 'हं' को जोड़ते हैं, जो 'सोऽहं' बनाता है। अब द्वितीय चरण में पहले श्वास 'हं' के साथ बाहर निकालते हैं और फिर श्वास 'सो' के साथ लेते हैं, जो 'हंसो' बनाता है।

2. एक आवृत्ति के बाद मानसिक शून्यता की स्थिति में आइए और चेतना को आज्ञाचक्र (भ्रूमध्य) अथवा अनाहतचक्र (हृदयमध्य) पर एकाग्र कीजिए।

3. पुनः आने–जाने वाली श्वास के साथ हंसो का अभ्यास करिए। कुछ दिनों तक लगातार अभ्यास से पूर्णता प्राप्त होने पर तृतीय चरण में जाइए।

तृतीय चरण –

1. किसी स्थिर आसन में सुखपूर्वक बैठकर भीतर तथा बाहर आने वाली श्वास पर चेतना को केंद्रित कीजिए।

2. अनुभव करिए कि अपनी श्वास नासिका से नाभि तक जा रही है और नाभि से नासिका तक वापस आ रही है।

3. भीतर जानेवाली श्वास के साथ 'सो' तथा बाहर आनेवाली श्वास के साथ 'हं' का ध्यान करिए।

4. लययुक्त 'सो' को 'हं' की तरंगों से इस तरह जोड़ें कि 'सोऽहं-हंसो' की एक आवृत्ति बने।

5. एक आवृत्ति के बाह्य मानसिक शून्यता की स्थिति में आकर अपनी चेतना को भ्रूमध्य पर केंद्रित करें।

6. पुनः 'सोऽहं-हंसो' की आवृत्ति को दुहराएँ। तृतीय चरण के पूर्ण अभ्यास के बाद अगले चरण का अभ्यास करें।

चतुर्थ चरण -

1.किसी स्थिर तथा आरामदायक आसन में बैठकर लंबी श्वास लेकर चेतना को मूलाधार चक्र में केंद्रित कीजिए।

2. अनुभव कीजिए कि मूलाधार चक्र में कुंडलिनी त्रिभुजाकार आकृति के अंदर मुँह नीचे तथा पूँछ ऊपर किए सुप्त है।

3. अब 'सो' के साथ श्वास लीजिए, चेतना को 'सो' की तरंग के साथ मूलाधार चक्र से स्वाधिष्ठान चक्र, फिर मणिपूर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र तथा अंत में आज्ञा चक्र में केंद्रित कीजिए।

4. आज्ञा चक्र में श्वास की चेतना को रोककर 'हं' की मानसिक तरंगों के साथ श्वास छोड़ते हुए मेरुदंड होते हुए मूलाधार में चेतना को केंद्रित करें।

5. मूलाधार चक्र से आज्ञा चक्र तक 'सो' के साथ आरोहण करते हैं तथा आज्ञा चक्र से मूलाधार चक्र तक 'हं' की तरंग के साथ अवरोहण होता है। इस चतुर्थ चरण का पूर्ण अभ्यास होने पर आगे के चरण में अभ्यास करें।

पंचम चरण -

1. षण्मुखी मुद्रा अथवा योनि मुद्रा (पद्मासन या वज्रासन में बैठकर दोनों अंगूठे से, दोनों कानों को बंद करें, दोनों तर्जनी से दोनों आँखों, मध्यमा से दोनों नाक के छिद्रों, दोनों अनामिका के ऊपर के ओठ, कनिष्ठा से नीचे के ओठ बंद करने पर) की स्थिति में आइए।

2. 'सो' की तरंगों को रीढ़ प्रदेश में मूलाधार चक्र से आज्ञा चक्र तक ले जाइए।

3. आज्ञा चक्र में मानसिक शून्यता की स्थिति में आइए।

4. आज्ञा चक्र में मानसिक शून्यता की स्थिति के बाद 'हं' की तरंग के साथ आज्ञा-चक्र से मूलाधार में मानसिक शून्यता की स्थिति के बाद 'हं' की तरंग के

साथ आज्ञा चक्र से मूलाधार चक्र तक चेतना को रीढ़ प्रदेश होते हुए ले जाइए।

5. एक आवृत्ति के बाद श्वास छोड़कर आराम की स्थिति में आइए।

6. पुनः योनि-मुद्रा की स्थिति में आकर 'सो' की तरंग को मूलाधार से आज्ञा-चक्र तथा 'हं' की तरंग को आज्ञा चक्र से विभिन्न चक्रों से होते हुए मूलाधार चक्र तक की आवृत्ति का अभ्यास करें।

इस प्रकार अजपा के सतत अभ्यास से साधक आत्मा और ब्रह्म की एकता का, हृदय में आत्म पूर्णता की चेतना के आनंद का अनुभव करके सच्चिदानंदमय हो जाता है- अर्थात् मानव-चेतना विकास की उच्चतम स्थिति 'समाधि' में पहुँच जाती है।

अजपा द्वारा रोगोपचार –

1. प्राण, मंत्र और चेतना को संयुक्त करने से अजपा बनता है। यह केवल पूजा और जप का एक तरीका मात्र नहीं है। अजपा केवल साधना नहीं है। अजपा सिर्फ समाधि भी नहीं है। अजपा सिर्फ प्राणायाम भी नहीं, वरन् अजपा मनुष्य के तीनों अधिभौतिक, अधिदैविक और आध्यात्मिक-तापों का शमन करता है तथा विभिन्न तनावों, क्रमशः शारीरिक तनावों, मानसिक तनावों तथा भावनात्मक तनावों को दूर कर शांति प्रदान करता है।

2. अजपा का सतत अभ्यास कुंडलिनी जागरण में सहायक हो सकता है।

3. अजपा अनिद्रा, हृदय रोग, सिर-दर्द आदि अनेक रोगों में भी रामबाण साबित हुआ है। तीन प्रकार के तापों को शमन करने के लिए नाथ सिद्धों ने एक मंत्र दिया, जिसे 'अजपा गायत्री' कहते हैं। इसके विभिन्न चक्रों के स्थान, देवता तथा अजपा की संख्या बताई गई है। इसका अभ्यास करने से साधक सभी प्रकार के तापों का शमन करके परम सुख और शांति का अनुभव करता है।

■

राज योग

*सुभाष विद्यालंकार

परमात्मा से आत्मा का संयोग, योग कहलाता है। किन्तु प्रश्न है यदि आत्मा और परमात्मा वास्तव में एक ही हैं तो इस तरह के संयोग की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। संयोग तो द्वैत में अर्थात् दो वस्तुओं के बीच होता है।

समाधि में लीन योगी जान लेता है कि जीवात्मा; परमात्मा ही है। इसलिये योग; परमात्मा से जीवात्मा के इस मिलन या संयोग की अनुभूति कराने का साधन है। योग की शारीरिक और मानसिक क्रिया प्रक्रियाओं के द्वारा साधक अपने अन्तः स्थल में विराजमान अपने परम तत्त्व का साक्षात् करता है। यह परमतत्त्व ही संसार का सर्वोत्कृष्ट तत्त्व या सत्ता है। योग साधना एक ऐसी प्रक्रिया या पद्धति या कार्य प्रणाली है जिसके द्वारा साधक आत्मा और परमतत्त्व परमात्मा या ब्रह्म के साथ ऐक्य या तादात्म्य का अनुभव करने लगता है।

अद्वैत वेदान्त के अनुसार इस सृष्टि के प्रत्येक जीव का आधारभूत तत्त्व शुद्ध चैतन्य या चित् है। यह चित् स्वयं बन्धन में नहीं है। किन्तु बन्धन में पड़ा प्रतीत होता है। यदि आत्मा वास्तव में मुक्त नहीं होता तो उसका मोक्ष नहीं हो सकता था। अतः प्रत्येक जीव मुक्ति या मोक्ष प्राप्त कर सकता है। परमात्मा के साथ उसका तादात्म्य था और है, किन्तु माया के आवरण के कारण उसे (जीव को) यह तादात्म्य अनुभव नहीं होता। माया के इस आवरण या परदे के कारण जीवात्मा और परमात्मा अलग-अलग या भिन्न प्रतीत होते हैं। अविद्या या अज्ञान के कारण जीवात्मा और परमात्मा का यह तादात्म्य पता नहीं चलता। किन्तु आत्मा और परमात्मा का तादात्म्य या ऐक्य ज्ञान या विद्या के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

ज्ञान दो प्रकार का होता है-

स्वरूप ज्ञान और क्रिया ज्ञान

स्वरूप ज्ञान - चित् या विशुद्ध चैतन्य है। इस विशुद्ध चैतन्य की प्राप्ति ही योग का लक्ष्य या उद्देश्य है।

क्रिया ज्ञान - ऐसी बौद्धिक प्रक्रियाएं हैं जिनके द्वारा स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान ऐसी मानसिक क्रिया या ऐसा बौद्धिक उपाय है जिसके द्वारा हम जान सकते हैं कि सत्य क्या है? मिथ्या क्या है? और ब्रह्म क्या है? अपने इस ज्ञान या विवेक से ब्रह्म का स्वरूप समझकर और अपना मन, ब्रह्म के इस स्वरूप पर तब तक एकाग्र करना जब तक हम ब्रह्म के पूर्ण स्वरूप को न जान लें और ब्रह्म का यह स्वरूप-ज्ञान

हमारे मन में सदा बना रहे तथा हमारे मन से अन्य सब विचार (वृत्तियां) निकल जायें। इस अवस्था में मन; ब्रह्म में या विशुद्ध चैतन्य में ही सदा लीन रहता है। मन में ब्रह्म या विशुद्ध चैतन्य का स्थायी ज्ञान सदा बना रहना ही स्वरूप-ज्ञान या स्वरूपावस्थिति कहलाती है।

इस स्वरूप-ज्ञान या स्वरूपावस्थिति से पहले योगाभ्यास के द्वारा योगी को क्रम मुक्ति प्राप्त होती है अर्थात् योगी; सत्य लोक में ब्रह्म के समीप पहुंच जाता है या उसे ब्रह्म का सायुज्य प्राप्त हो जाता है। ब्रह्म का यह सायुज्य या समीपता प्राप्त कर लेने पर योगी पूर्ण मोक्ष प्राप्त कर लेता है। पूर्ण मोक्ष, ब्रह्म-सायुज्य (समीपता) का ही परिणाम होता है।

किन्तु मनुष्य केवल बौद्धिक प्राणी ही नहीं है। उसके मन में अनेक प्रकार की भावनाएं और भक्ति भाव भी हैं। इन भावनाओं और भक्ति के अतिरिक्त उसका शरीर भी है। उपासना और योग की स्थूल तथा सूक्ष्म क्रियाएं शरीर से सम्बद्ध हैं और योग की स्थूल तथा सूक्ष्म क्रियाएं हठयोग से सम्बद्ध हैं।

हठयोग में ऐसी साधनाएं या अभ्यास किये जाते हैं जिनका सम्बन्ध हमारे स्थूल शरीर से है। स्थूल शरीर का सम्बन्ध हमारे सूक्ष्म शरीर से है।

सूक्ष्म शरीर

पांच ज्ञानेन्द्रियां अर्थात् नाक, कान, जीभ, त्वचा और आंख की शक्तियाँ, पांच कर्मेन्द्रियां अर्थात् हाथ, पैर, वाणी, गुदा और उपस्थ की शक्तियां, ग्यारहवां मन जिसके द्वारा ये शक्तियां काम करती हैं तथा जिसमें संकल्प-विकल्प होते हैं। पांच सूक्ष्म भूत; और प्राण तथा अहंकार पैदा करने वाली शक्ति बुद्धि; इन अठारह शक्तियों का समूह सूक्ष्म शरीर कहलाता है। मुख्य रूप से प्राण, मन और बुद्धि से बने सूक्ष्म शरीर में प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोष हैं। अन्न द्वारा बना स्थूल शरीर अन्नमय कोष है। अस्मिता (अहंकार) द्वारा बनी कारण देह (शरीर) का नाम ही आनन्दमय कोष है। हमारे स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर की तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान से शुद्धि होती है। तप के द्वारा हमारे शरीर और इन्द्रियों की शुद्धि होती है। स्वाध्याय के द्वारा हमारे मन, अहंकार और बुद्धि की परिशुद्धि होती है। ईश्वर प्रणिधान के द्वारा चित्त की शुद्धि होती है अर्थात् चित्त के ऊपर पड़े हुए राजसिक और तामसिक मल दूर हो जाते हैं। हमने जैसी बुद्धि, मन, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों आदि के साथ जन्म लिया है उन सबकी परिशुद्धि न होने से सम्यक् ज्ञान नहीं हो सकता। परमात्म तत्त्व के प्रत्यक्ष ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती।

जीवात्मा; अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पांच कोषों के आवरण से बंधा हुआ है। इन पंचकोषों से मुक्ति ही जीवात्मा की मुक्ति है। सबसे

ऊपर अन्नमय कोष है। उसके अन्दर प्राणमय कोष है और इसके अन्दर मनोमय कोष है। मनोमय कोष के अन्दर आनन्दमय कोष है।

शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त की शुद्धि के लिये साधना में जिन साधकों का प्रयत्न जितना प्रबल होगा उन्हें उतनी ही जल्दी सफलता मिलेगी।

हठयोग

हठयोग की क्रियाओं से शरीर को स्वस्थ और सशक्त बनाया जाता है। हमारा शरीर आग में बिना पकाये हुए कच्चे घड़े जैसा है। योग की अग्नि से शरीर को तपा कर मजबूत बनाया जाता है। घेरण्ड संहिता के अनुसार षट्कर्मों से शरीर को साफ किया जाता है। आसनों से शरीर मजबूत और स्वस्थ बनता है। मुद्राओं से ध्यान में बैठने पर शरीर का हिलना-डुलना बन्द हो जाता है। प्रत्याहार से मन में धैर्य आता है। प्राणायाम से शरीर और मन में हल्कापन आता है। ध्यान से प्रत्यक्ष ज्ञान होने लगता है और समाधि से निर्लिप्ति या वैराग्य की भावना आती है। इस प्रकार हठयोग की साधना से मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

हठयोग में प्राणायाम को बहुत महत्त्व दिया जाता है। इसलिये हठयोग प्राण विद्या कहलाती है। हठयोग के 'ह' शब्द से सूर्य अर्थात् प्राण वायु और 'ठ' शब्द से चन्द्र अर्थात् अपान वायु का अभिप्राय लिया जाता है। प्राणवायु और अपानवायु को मिलाकर सुषुम्ना में प्रविष्ट कराना और सुषुम्ना के रास्ते कुण्डलिनी शक्ति को ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्त्रार में पहुंचाना हठयोग की क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य है।

हठयोग में ऐसी साधनाएं या अभ्यास किये जाते हैं जिनका सम्बन्ध हमारे सूक्ष्म शरीर से है। इसलिये स्थूल शरीर पर नियन्त्रण करने का प्रभाव हमारे सूक्ष्म शरीर पर पड़ता है अर्थात् हमारे विचार, भावनाएं और राग-द्वेष प्रभावित होते हैं। इस तरह इन साधनाओं से मन पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है।

उपभोग

हमारा मन और शरीर संसार के विषयों का उपभोग करने के साधन हैं। जब तक हमारा मन सांसारिक विषयों में फंसा रहता है तब तक हम ब्रह्म से तादात्म्य या ऐक्य की अनुभूति नहीं कर सकते। सांसारिक विषय-भोग; विशुद्ध चैतन्य या चिदवस्था प्राप्त करने के मार्ग में विघ्न हैं। चिदवस्था प्राप्त करने के लिये चित् शक्ति पर पड़े सभी आवरण दूर करने होते हैं। इसलिये योग के द्वारा चित्त वृत्तियों पर और प्राण पर नियन्त्रण प्राप्त किया जाता है। और मन तथा प्राण के सभी आवरण या मल दूर किये जाते हैं। चित्त वृत्तियों और प्राण को पूरी तरह से नियन्त्रित कर लेने पर चित् या परमात्मा का साक्षात् होता है। तब मन और शरीर उस परा-शक्ति में लीन हो जाते हैं जिससे वे उत्पन्न हुए थे। हमारा मन और पंच भूतों से बना यह शरीर उसी परा-शक्ति का ही प्राकट्य है। यह पराशक्ति; शिव या चित् है।

योग का उद्देश्य

योग, विशुद्ध चैतन्य की प्राप्ति का साधन है। योग के द्वारा हम अपना मार्ग रोकने वाले अज्ञान या अविद्या को दूर करते हैं। अज्ञान का अन्धकार दूर करने की प्रक्रिया ही शक्ति है। इस शक्ति के दो स्वरूप हैं। निबोधिका शक्ति और निरोधिका शक्ति ।

निबोधिका शक्ति हमें ज्ञान प्रदान करती है। और निरोधिका शक्ति संसार के दृश्य या स्थूल विषयों से मन की आसक्ति हटाती है। सांसारिक विषयों से मन विरक्त हो जाने पर विशुद्ध चैतन्य के साक्षात्कार की अवस्था उत्पन्न होती है। इस अवस्था के प्रादुर्भाव को ही समाधि कहा जाता है।

समाधि की अवस्था में जीवात्मा और परमात्मा के तादात्म्य या ऐक्य अथवा समरसता की अनुभूति होती है। यह अनुभूति, प्राण और मन का लय होने पर तथा मन के सभी संकल्प–विकल्प नष्ट होने पर होती है। समाधि की अवस्था में उत्पन्न समरसत्व की स्थिति; आत्मा की सहजावस्था या आत्मा का स्वाभाविक स्वरूप है। जब तक यह अवस्था उत्पन्न नहीं होती तब तक मन में संकल्प–विकल्प या वृत्तियां उठती रहती हैं। मन की ये वृत्तियां अहंकार की भावना के कारण या 'तेरा', 'मेरा' के भेद के कारण उठती रहती हैं।

समाधि की अवस्था पानी में घुले हुए नमक के टुकड़े के समान है। जैसे नमक का टुकड़ा पानी के साथ घुल–मिल जाता है या एकाकार हो जाता है। वैसे ही समाधि की अवस्था में जीवात्मा और परमात्मा के बीच ऐक्य स्थापित हो जाता है।

योग और समाधि

कुलार्णव तन्त्र के अनुसार समाधि; ध्यान की वह अवस्था है जिसमें 'यहाँ' या 'यहाँ नहीं' का बोध नहीं रहता। समाधि की अवस्था में योगी आत्मा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर शान्त, अगाध जल की तरह निश्चल बना रहता है।

माया–तन्त्र के अनुसार योग जीवात्मा और परमात्मा का संयोग है।

अन्य विचारों के अनुसार योग; शिव और आत्मा के तादात्म्य या ऐक्य भाव का ज्ञान है।

आगमवादियों के अनुसार शक्त्यात्मक ज्ञान या शक्ति का ज्ञान योग है। कुछ के मत में पुराण–पुरुष या शाश्वत–पुरुष का ज्ञान योग है।

प्रकृतिवादियों के अनुसार शिव और शक्ति के संयोग का ज्ञान ही योग है।

योग की ये सभी परिभाषाएं एक ही बात का संकेत करती हैं कि मनुष्य की आत्मा या जीवात्मा द्वारा यह अनुभव करना कि ब्रह्म ही सारे संसार के नियामक हैं।

हठयोग प्रदीपिका के अनुसार राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लयस्तत्त्व, शून्याशून्य, परमपद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरञ्जन, जीवन्मुक्ति,

सहजा, तुरीया ये सब एक ही अवस्था हैं। इस अवस्था में चित्त की वृत्तियां रुक जाती हैं और कर्म समाप्त हो जाते हैं। सुख और दुःख से रहित यह अवस्था निर्विकार कहलाती है। निर्विकार अर्थात् जिस अवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। इस अवस्था में शरीर छूटने पर विदेह कैवल्य या परम मुक्ति प्राप्त होती है। आत्मा की यह अवस्था ही स्थायी अवस्था या स्वरूपावस्था है।

योग के प्रकार

यद्यपि योग का उद्देश्य एक ही है, किन्तु इस उद्देश्य को प्राप्त करने के मार्ग भिन्न-भिन्न हैं। समान्यतया योग के चार प्रकार बताये जाते हैं।

हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग और राजयोग। हठयोग से शरीर और मन स्वस्थ तथा सतेज होकर दूसरे योगों के लिये उपयोगी बन जाते हैं। हठयोग की साधना से योगी भूख-प्यास, निद्रा-आलस्य, गर्मी सर्दी आधि-व्याधि (मानसिक और शारीरिक रोग), जरा-वार्धक्य आदि द्वन्द्व-समूहों पर विजय प्राप्त करते हैं। हठयोगी, त्राटक-योग के अभ्यास से दूर-दृष्टि, सूक्ष्म-दृष्टि और अव्याहत-दृष्टि (बेरोक टोक देखने की शक्ति) को बढ़ाते हैं। कुम्भक योग के द्वारा योगी बहुत दिन तक निराहार तथा नीरोग होकर रह सकते हैं।

हठयोग दो प्रकार का है- गोरक्ष मुनि का छह अंगों वाला योग और मार्कण्डेय मुनि का आठ अंगों वाला योग।

गोरक्ष मुनि के छह अंगों वाले योग में यम और नियम नहीं हैं जबकि अष्टांग योग में यम और नियम का स्थान सबसे पहला है। इन दोनों प्रकार के योगों का उद्देश्य कैवल्य-लाभ या मोक्ष प्राप्ति ही है।

मन्त्रयोग

प्रणव और गायत्री आदि मन्त्रों के नियमित और लम्बी अवधि तक जप करने से मन लीन हो जाता है। इससे भी मोक्ष-लाभ मिलता है। भृगु, कश्यप आदि ऋषि मन्त्र-योग के उपदेष्टा हैं।

लययोग

वेद व्यास आदि कई ऋषि लय-योग के उपदेष्टा हैं। लय योग के इन ऋषियों के अनुसार हमारे शरीरों में तीन मुख्य शक्तियां हैं-

ऊर्ध्व - ष्शक्ति, मध्य-शक्ति और अधः शक्ति

ऊर्ध्व शक्ति के निपातन से और अधः शक्ति के संकोचन से मध्य-शक्ति का उद्बोधन होता है। इस प्रक्रिया से सात्विक आनन्द का प्रवाह अनुभव होता है। इस अनुभव या उपलब्धि के लिये शरीर के इन चक्रों में ध्यान करना होता है:-

स्वाधिष्ठान चक्र, नाभिचक्र (मणिपूर चक्र), हृदय चक्र (अनाहत चक्र), कण्ठ चक्र (विशुद्ध चक्र), तालु चक्र, भ्रू चक्र (आज्ञा चक्र), ब्रह्मरन्ध्र चक्र और अन्तिम ब्रह्मचक्र या सहस्त्रार। इन चक्रों में ध्यान करने से आनन्द मिलने लगता है। लय-योग के अभ्यास से भी मोक्ष लाभ होता है। लय योग के अनुभवी गुरु से लय योग की साधना के सम्बन्ध में अनेक रहस्य मालूम हो सकते हैं। लय-योग की साधना से शरीर के स्नायविक शक्ति के केन्द्र भी पता चल जाते हैं।

राजयोग

राजयोग, आठ अंगों में विभक्त है- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। महर्षि पतञ्जलि ने अपने योग शास्त्र में राजयोग के इन अंगों को चार भागों में विभक्त किया है-

समाधि पाद, साधन पाद, विभूति पाद और कैवल्य पाद।

अष्टाङ्ग योग के पहले पांच अंग; यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार, बहिरङ्ग साधन हैं और शेष तीन धारणा, ध्यान तथा समाधि, अन्तरङ्ग साधना के अंग हैं। बहिरंग साधना के द्वारा चित्त निर्मल हो जाता है। चित्त जितना निर्मल होगा, सिद्धि उतनी ही शीघ्र होगी। मलिन चित्त से ध्यान लगना असम्भव है। चित्त में रजो मल रहने से चित्त चंचल रहता है और तमो मल से ध्यान के समय नींद आ जाती है।

अन्तरंग साधना का पहला अंग धारणा है। किसी ध्येय पदार्थ या लक्ष्य पर मन लगाना धारणा कहलाता है। अधिक समय की स्थायी धारणा का नाम ही ध्यान है और ध्यान के गाढ़ तथा गम्भीर होने का नाम समाधि है।

चित्त का लय

हठयोग, मन्त्र योग, लय योग और राजयोग इन सब में ही लय का सम्बन्ध है। लय के बिना योग होता ही नहीं। प्रश्न है कि किसका लय?

इसका उत्तर है चित्त का लय।

महर्षि पतञ्जलि ने चित्त के लय पर बहुत जोर दिया है। योग साधना की इन विभिन्न विधियों में चित्तवृत्तियों पर नियन्त्रण कर ब्रह्म साक्षात्कार किया जाता है। योग की इन चारों ही विधियों का सम्बन्ध अष्टांग योग से है। ब्रह्म साक्षात्कार के लिये समाधि की अवस्था मन्त्रयोग में महाभाव, हठयोग में महाबोध, लय योग में महालय और राजयोग में ज्ञान योग कहलाती है।

कुण्डलिनी योग में मन और शरीर को शिव के साथ संयुक्त कर पूर्ण समाधि प्राप्त की जाती है। राजयोग या ज्ञानयोग में प्रमुख रूप से बौद्धिक-प्रक्रियाओं का अभ्यास किया जाता है किन्तु साथ ही साथ योग की अन्य क्रियाओं का भी अभ्यास किया जाता है। मन्त्र योग में उपासना और पूजा का बहुत महत्त्व होता है। हठयोग मे

प्राणायाम, मुद्रा, आसन और षट्कर्म आदि शारीरिक क्रियाओं का अभ्यास किया जाता है। किन्तु इन सभी योग पद्धतियों में प्रत्येक योग पद्धति की क्रियाओं और विधियों को भी अपनाया जाता है और उनका नियमित अभ्यास किया जाता है। ज्ञान योगी, कुण्डलिनी शक्ति को जगाये बिना ही अपने मानसिक प्रयत्न से स्वरूप-ज्ञान प्राप्त करता है। किन्तु हठयोगी कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा ही स्वरूप-ज्ञान पाता है। सहस्त्रार में स्थित शिव के साथ कुण्डलिनी का संयोग स्वरूप-ज्ञान है।

योग की सभी पद्धतियों में अष्टांग योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि किसी न किसी अंश तक अपनाये जाते हैं। सभी योग पद्धतियों में नैतिक आचार-व्यवहार, धार्मिक प्रवृत्ति, नियमित अभ्यास और साधना आवश्यक हैं।

यम, नियम और आसनों के अभ्यास से शरीर पर नियन्त्रण प्राप्त किया जाता है। यम, नियम, और आसनों के साथ प्राणायाम का अभ्यास करने से प्राण-शक्ति पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। इन चारों के साथ प्रत्याहार का अभ्यास करने से इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखा जाता है और उन्हें वशवर्ती बनाया जाता है। इसके बाद धारणा, ध्यान, समाधि के अभ्यास से चित्त की वृत्तियां नष्ट की जाती हैं। इस अवस्था में केवल बुद्धि काम करती है। वैराग्य अर्थात् सुख दुःख से उदासीन रहने का अभ्यास करने से बुद्धि का भी लय हो जाता है और योगी को शुद्ध आत्मस्वरूप का ज्ञान हो जाता है। इस अवस्था में जीव, शुद्ध बुद्धि स्वरूप बनकर प्रकृति और ब्रह्म के साथ उसी तरह मिल जाता है जैसे पानी में नमक की डली घुल जाती है। समाधि या चित्त लय की इस अवस्था का वर्णन शास्त्रों में इस प्रकार किया गया है-

''मनसो वृत्तिशून्यस्य ब्रह्माकारतया स्थितिः।''

तथा

''यस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।''

अर्थात् विचार तरंगों से सर्वथा रहित मन की अवस्था ब्रह्म के आकार की हो जाती है। ब्रह्मज्ञान या ब्रह्म साक्षात्कार हो जाने पर इस सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थों का ज्ञान हो जाता है।

■

सिद्धसिद्धांतपद्धति

*रामलाल श्रीवास्तव

महायोगी शिवगोरक्ष भगवान् गोरखनाथ ने 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' ऐसे असाधारण तथा अपूर्व, परमदिव्य योगशास्त्र की रचना कर आधिदैविक, आधिदैहिक और आधिभौतिक दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति प्रकाशित कर आध्यात्मिक मुक्ति का विधान प्रशस्त किया। यह विधान ही सिद्ध-साधना-पद्धति में सिद्धांत कहा गया है। यह पिंडगत साधना की ब्रह्मांड में अखंड परमात्मस्वरूप की अनुभूति का सच्छास्त्र है। गोरखनाथजी की दृष्टि में यह सिद्धांत का सार है, श्रेयस्कर और प्रासादिक अथवा निर्मल है। सिद्धसिद्धांतपद्धति का उपसंहार करते हुए उन्होंने अभिमत व्यक्त किया–

'पिण्डे' सर्वगतं विधानममलं सिद्धांतसारं वरन् ।

(सिद्धसिद्धांतपद्धति, ६/९३)

नाथ संप्रदाय अथवा सिद्धामृत मार्ग ही नहीं, संपूर्ण नाथयोग तथा सामान्य-असामान्य योग साधना के धरातल पर 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' गोरखनाथजी की अप्रतिम देन है। पतंजलि का योगदर्शन तो योग के आदिवक्ता भगवान् हिरण्यगर्भ के योगानुशासन का सूत्रात्मक संकेत मात्र है और महर्षि ने आरंभ में ही हिरण्यगर्भ की योगकृति का संदर्भ व्यक्त किया है :

'अथ योगानुशासनम्'

(योगसूत्र, १/१)

इस संदर्भ का तात्पर्य यह है कि पतंजलि ने योग का जो कुछ भी निदर्शन किया है, उसका आधार-वाङ्मय हिरण्यगर्भ का 'योगानुशासन' है। महाभारत में योग के वक्ता हिरण्यगर्भ का उल्लेख है।

''हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।''

(महाभारत शांति. ३४७/६५)

यद्यपि गोरखनाथजी की योगदृष्टि में हिरण्यगर्भ का 'योगानुशासन' था तथापि उन्होंने पार्वती के प्रति शिव द्वारा सप्तश्रृंग पर उपदिष्ट महाज्ञान का, जिसका महायोगींद्र मत्स्येंद्रनाथ ने श्रवण कर उन्हें गुरु-परंपरा को सजीव रखने के लिए प्रदान किया था, 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' में नाथयोग के रूप में स्पष्ट प्रतिपादन है। हिरण्यगर्भ के 'योगानुशासन' से यही 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' की विशिष्टता है और यही कारण है कि गोरखनाथजी की यह रचना निरंतर अपनी मौलिकता में प्रतिष्ठित है और योगसाधना की सिद्धि के स्तर पर भविष्य में भी प्राणवान् अंग के रूप में स्वीकृति होती रहेगी। गोरखनाथजी ने 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' शास्त्र को महादिव्य परमेश्वर

रहस्य का सिद्धांत कहा है। सिद्धों का अनुभवस्वरूप 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' योगशास्त्र साक्षात् अनुभव है, आत्मानंद प्रदान करनेवाला है और सर्वसंदेहनाशक है, सत्स्वरूप है।

एतच्छास्त्रं महादिव्यं रहस्यं पारमेश्वरम्।
सिद्धांतं सर्वसारस्यं नानासंकेतनिर्णयम्॥
सिद्धानां प्रकटं सिद्धं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
आत्मानंदकरं नित्यं सर्वसन्देहनाशनम्॥

(सिद्धसिद्धांतपद्धति, ६/९७-९८)-

गोरखनाथजी द्वारा उपदिष्ट योग महाज्ञान ही नाथयोग-मार्ग का साधन तत्त्व है। यही कारण है कि नाथयोग मार्ग को सिद्धमत, सिद्धामृत मार्ग अथवा अवधूत-मार्ग कहा गया है। यद्यपि नाथ संप्रदाय में अनेक महत्त्वपूर्ण योगग्रंथों की रचना हो सकी है, तथापि 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' ग्रंथ ऐसा सिद्धांत-प्रतिपादित दूसरा ग्रंथ कोई है ही नहीं। वास्तव में यह योगदर्शन का संपूर्ण विवेचनात्मक विचार-वाङ्मय है और इस योगज्ञान में गोरखनाथजी ने बड़ी रहस्यमयी सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा साधन प्रक्रिया भर दी है, पर उसका अभ्यास सिद्धपुरुष अथवा अवधूत गुरु की ही देख-रेख में संभव है। 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' के गहन परिशीलन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस अप्रतिम नाथयोगशास्त्र में योगदर्शन तथा प्रक्रिया-साधनाभ्यास का सफल समन्वय हो सका है।

योग विषय का प्रतिपादन सिद्धसिद्धांतपद्धति में गोरखनाथजी करते हुए जिस प्रत्यक्षानुभूति-अपरोक्षानुभूति के सहारे परमात्मा के अखंड-अलख निरंजन स्वरूप का निजाशक्ति के समाश्रय में वर्णन करते है, वह अन्यत्र असाध्य भले ही न हो, दुर्लभ तो है ही। इस योगशास्त्र के छः अध्यायों में पिंडोत्पत्ति, पिंडविचार, पिंडसंवित्ति, पिंडाधार, पिंडपदसमरसभाव और नित्यावधूत-लक्षण का उपदेश करते हुए गोरखनाथजी ने हठयोग-प्राण-साधना के परिप्रेक्ष्य में परम पद की प्राप्ति को ही नाथयोग का प्रतिपाद्य स्वीकार किया है। उन्होंने समस्त तत्त्वों की समावस्था के निरुद्यम सहज स्थिति को समाधि कहते हुए उसकी असम्प्रज्ञात चरमावस्था में परमपद की प्राप्ति सिद्ध की है। उन्होंने नाथयोग का परम तत्त्व इस सिद्धांत में स्थिर किया है कि पिंड में अखंड ब्रह्मांड की सहज अभिव्यक्ति के माध्यम से परमात्म-ज्योति का पूर्ण साक्षात्कार होता है। यही सिद्ध-मार्ग कहा गया है। गोरखनाथजी ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'योगबीज' में इस कथन की प्रामाणिकता अंकित की है।

नानामार्गेषु दुष्प्राप्यं कैवल्यं परमं पदम्।
सिद्धमार्गेण लभ्येत नान्यथा शिवभाषितम् ॥

उन्होंने इस कथन की पुष्टि के लिए इसे शिवभाषित–शिव–उपदिष्ट कहकर इसके सत्सिद्धांतस्वरूप की रक्षा की है। उन्होंने परमपद को स्वसंवेद्य कहा है, स्वसंवेद्य कह कर योगमार्ग का सर्वतंत्रस्वरूप स्पष्ट किया है।

'स्वसंवेद्यमेव' परमपदम् ।

(सिद्धसिद्धांतपद्धति, ५/४)

यद्यपि परम पद स्वसंवेद्य है, अपरोक्षानुभवैकगम्य है, तथापि जिस साधक पर सद्गुरु की कृपा नहीं होती अथवा जो साधक सद्गुरु के योगोपदेशामृत से वंचित रह जाता है, वह परम पद को प्राप्त नहीं कर सकता है।

प्रसादात्स्वगुरोः सम्यक् प्राप्यते परमं पदम्।

\+ \+ \+

अतएव – परमपदप्राप्त्यर्थं स सदगुरुः सदा वन्दनी॥

(सिद्धसिद्धांतपद्धति, ५/६५–७०)

इस परम पद की प्राप्ति की दिशा में अधः शक्ति के रूप में प्रसुप्त कुंडलिनी का प्रबोधन आवश्यक है। मूलाधार में सुप्त कुंडलिनी अपनी सुप्तावस्था से जाग कर मणिपूर और अनाहत चक्र को पार करने के उपरांत प्रकाशस्वरूपिणी हो उठती है। यह मध्याशक्ति कहलाती है और आज्ञाचक्र का भेदन कर ऊर्ध्वशक्ति के रूप में सहस्त्रार में प्रवेश कर शिवस्वरूप हो जाती है। 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' रचना निसंदेह सिद्धों के सिद्धांत का अक्षर वाङ्मय है और सिद्धपुरुषों द्वारा परंपरा से स्वीकृत है। इसकी लोकप्रियता का प्रमाण यह है कि अभी प्रायः दो सौ साल पहले काशी के प्रसिद्ध नाथयोगमर्मज्ञ बलभद्र ने इसके सारतत्त्व को स्वरचित श्लोकों में अनुस्यूत कर 'सिद्धसिद्धांतसंग्रह' का प्रणयन किया, जो इस योग–ग्रंथ को समझने का एक विशिष्ट माध्यम है। किन्हीं कृष्णराज के निर्देश से बलभद्र ने 'सिद्धसिद्धांतसंग्रह' रूप पुण्यकार्य संपादित किया था। उनका कथन है–

यत्पदाब्जरजः स्पर्शादरजस्कं मनो भवेत् ।
स एव गुरुनाथो मे कृपासिन्धुः प्रसीदताम् ॥
अथो ये सिद्धसिद्धांतपद्धतौ सुनिरूपिताः ।
संग्रहं तनुते तेषां कश्चिच्छ्री कृष्णतुष्टये ॥

(सिद्धसिद्धांतपद्धति, १/१–२)

बलभद्र ने श्रीनाथ गुरु–साक्षात् श्री गोरखनाथ के ही पद कमलों में प्रणति के परिणामस्वरूप उनकी प्रसन्नता अथवा अनुग्रह से मन का अरजस्क–निर्मल होना स्वीकार किया है। उन्होंने 'सिद्धसिद्धांतसंग्रह' में 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' का साधारणीकरण किया है। 'सिद्धसिद्धांतसंग्रह' का प्रकाशन महामहोपाध्याय गोपीनाथ

कविराज ने सन् १९२५ में सरस्वती भवन 'टेक्स्ट सेरीज' के अंतर्गत काशी से किया था।

मैंने संस्कृत का मूलपाठ अत्यंत संशोधित रूप में सिद्धपूरबाड़ा कुटी गांधारा, जालंधर द्वारा प्रकाशित और सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज दिल्ली द्वारा मुद्रित 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' से लिया है। यह अत्यंत प्रामाणिक और शुद्ध है तथा इसके दो संस्करण सन् १९४० ई. और १९७१ ई. में क्रमशः प्रकाशित हो चुके हैं। इसकी संस्कृत टीका महामहोपाध्याय द्रव्येश झा ने लिखी है और इसका हिंदी रूपांतर योगी भीष्मनाथ ने किया है। मैंने अपने हिंदी रूपांतर में द्रव्येश झा महोदय की टीका से भी थोड़ी-बहुत सहायता ली है, इससे मैं अपने हिंदी-भाष्य को अधिक सुगम सहज-सुबोध कर सका।

'सिद्धसिद्धांतपद्धति' के उपर्युक्त संस्करण का अंग्रेजी में सारतत्त्व प्रस्तुत करने में डॉ. कल्याणी मल्लिक ने भी उपयोग किया और इस तरह 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' की लोकप्रियता बढ़ाने में उनका योगदान कम नहीं है। 'गोरखनाथ एंड दि कनफटा योगीज' अंग्रेजी ग्रंथ के प्रणेता महामति ब्रिग्स ने भी 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' की चर्चा की है और गोरखनाथकृत इस रचना के अतिरिक्त उन्होंने नित्यानंदकृत 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' नामक एक और रचना का उल्लेख किया है। 'गोरक्षसिद्धांत संग्रह' में इन्हीं नित्यानंद को नित्यनाथ कहा गया है और उमसें नित्यानाथकृत 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' से दो-तीन श्लोक उद्धृत हैं। उनमें से (१/३) एक है-

न ब्रह्मा विष्णुरुद्रौ न सुरपति सुरा नैव पृथ्वी न चापो
नैवाग्निर्नापि वायुर्न च गगनतलं नो दिशा नैव कालः।
नो वेदा नैव यज्ञा न च रविशशिनौ नो विधिर्नैव कल्पाः
स्वयं ज्योतिः सत्यमेकं जयति तव पदं सच्चिदानंदमूर्ते॥

सच्चिदानंदस्वरूप परमेश्वर! आप के परमपद तक ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र, इंद्र और देवगण, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, दिशाएँ, काल वेद, यज्ञ, सूर्य और चंद्रमा, विधि-कल्प की भी पहुँच नहीं है, एकमात्र सत्स्वरूप निजा शक्ति-ज्योति ही इस परम पद में अभिव्यक्त है।

महायोगी गोरखनाथजी ने 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' में योगसाधकों के संतोष और आत्मतृप्ति के लिए यह सिद्धांत स्थिर किया है कि जो कुछ भी उस शरीर में सुखानुभव है, वही स्वर्ग है और जो दुःख है, वही नरक है। सकाम कर्म ही बंधन है, निर्विकल्पता ही मुक्ति है, द्वैत-प्रपंच की शांति से ही यह मुक्ति सुलभ होती है।

''यत्सुखं तत्स्वर्गं यदुःखं तन्नरकं, यत्कर्म तद्बन्धनं यन्निर्विकल्पं तन्मुक्तिः।''

(सिद्धसिद्धांतपद्धति, ३/१३)

यह स्वीकार करना नितांत युक्तिसंगत और अत्यंत समीचीन है कि महायोगी गोरखनाथजी ने 'सिद्धासिद्धांतपद्धति' में सनातन, परंपरागत योग का स्वरूप साधना और दर्शन के स्तर पर सुनिश्चित किया। योग सार्वभौम जीवन-दर्शन का प्रयोगात्मक सर्वश्रेष्ठ विज्ञान है, जिसके समाश्रय में सांख्य, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा को क्रमशः प्रकृति-पुरुष के तत्त्वात्मक संबंध, दुःख की आत्यन्तिक निवृति, जड़ से असंगता, असत् से परे सद्ज्ञान की प्रतिष्ठा, कर्म में परमेश्वर की आराधना और आत्मज्ञान अथवा अखंड ब्रह्मज्ञान में स्वरूपबोध के उद्गम का मूल प्रवाह दर्शनीय है।

योग के संबंध में प्राचीन काल से ही तंत्र और देहात्मवादी दर्शनों के परिप्रेक्ष्य में अनेक भ्रामक और गलत धारणाओं से सत्य के प्रति जिज्ञासु साधकों को दिग्भ्रमित होना पड़ा। महायोगज्ञानामृत से तृप्त होनेवाले उत्सुक प्राणियों को विभिन्न सांप्रदायिक और दार्शनिक मान्यताओं के कठघरों में बड़ी-बड़ी प्रताड़नाएँ सहने पर भी सत्स्वरूप का बोध दुर्लभ होता गया। तथाकथित आत्मज्ञानियों और परमात्मतत्त्व की चर्चा करने वालों ने भ्रमित कर दिया। अतएव 'सिद्धसिद्धांतपद्धति' की रचना की आधारशिला है परमपद की सहज प्राप्ति, जिसमें जीवात्मा और परमात्मा में अभेदता-संपूर्ण सामरस्य अथवा ऐक्य की स्थापना हो जाती है। ■

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज

सनातन धर्म में देवप्रतिमा पूजन

*डॉ0 रंगनाथ त्रिपाठी

सृष्टि प्रपंच की प्रथम वाणी भगवती श्रुति के द्वारा हम जीवों को मन, बुद्धि व इन्द्रियाँ प्राप्त हैं जिससे हम सुख एवं दु:ख का अनुभव करते हैं। ज्ञान तथा बुद्धि देकर ईश्वर ने हम पर बड़ी कृपा की है इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि हम वेदादि प्रदर्शित मार्ग द्वारा ईश्वर की आराधना करें। ईश्वर का श्वास ही वेद है इसीलिये स्मृतियों में लिखा है कि–

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम् ॥

इसलिये हमारे आराधना का मूल वेद तन्मूलक स्मृति पुराणादि ग्रन्थ हैं। उन ग्रन्थों में आराधना की दो पद्धतियाँ बतायी गयी हैं। ज्ञानियों के लिये निराकार उपासना और अल्पज्ञों के लिये साकार प्रतिमा की उपासना का विधान है। **'उपगम्य आसनम् इति उपासनम्'** अर्थात् देवोन्मुख होकर विशुद्ध भाव से ईश्वर में प्रवृत्त होना ही उपासना है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

(गीता १५/७)

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि प्रत्येक जीव में आत्मा मैं ही हूँ। ईश्वर की उपासना मानव कई प्रकार से करता है; साकार रूप में प्रतिमा स्थापित करता है। **'प्रतिमीयते इति प्रतिमा'** प्रति+मा+अङ्+टाप। अनुकृतिः, प्रतिबिम्बम्, प्रतिच्छाया, प्रतिकृतिः। **प्रतिमीयते अनयेति करणे अङ्।** प्रतिमा किसी वास्तविक या काल्पनिक आकृति के अनुरूप बनायी हुई किसी देवता की मूर्ति या चित्र आदि को कहते हैं।

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता ॥

(भागवत ११/२७/१२)

पत्थर, लकड़ी, धातु, चन्दनादि लेप, चित्रमयी, मिट्टी या बालू, मनोमयी और मणिमयी इस तरह भगवान की आठ प्रकार की प्रतिमाएँ कही गयी हैं। अन्य पुराणों के अनुसार नव प्रकार की प्रतिमाएँ भी कही गयी हैं, उसमें मिट्टी की प्रतिमा को अधमाधम कहा गया है। यथा–

अधमाधमा वा विज्ञेया मृण्मयी प्रतिमा च या ॥

(स्कन्द पुराण)

हयशीर्षपंचरात्र के अनुसार सात प्रकार की प्रतिमा कही गयी है। महाकपिल पंचरात्र के अनुसार पाँच प्रकार की प्रतिमा कही गयी है। जिसमें मिट्टी आदि की प्रतिमाओं का उत्तरोत्तर महत्त्व बतलाया गया है। तद्यथा–

अध्यक्ष, वेद विभाग, श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ गोरखपुर

मृण्मयात् दारुजे पुण्यं दारुजदृष्टिका भवे।
इष्टकोत्थाच्छैलजे स्याद्धेमादेरधिकं फलम् ॥

(अग्नि पुराण ३८/३२-३३)

मिट्टी की मूर्ति से लकड़ी की मूर्ति, लकड़ी से ईंट, ईंट से पत्थर, पत्थर से स्वर्ण आदि धातुओं की प्रतिमाओं का उत्तरोत्तर अधिक महत्त्व बताया गया है। अतः स्वबुद्धि विवेक से प्रतिमार्चन करना चाहिये। शास्त्रों में विभिन्न प्रकार से निर्मित मूर्तियों का अलग-अलग फल भी बताया गया है। यथा-

सर्वेषामेव देवानां महानीला यशः प्रदा।
दारुजा कामजा प्रोक्ता सौवर्णी भुक्ति-मुक्तिदा।।
राजती स्वर्गफलदा ताम्री ह्यायुर्विवर्द्धिनी।
कांस्या बाह्यपदं हन्ति रैतकी शत्रुनाशिनी ॥
सर्वभोगप्रदा शैली स्फाटिकी दीप्ति कारिका।
महाभोगप्रदा ख्याता मृण्मयी खलु शोभना ॥

समस्त देवताओं की महानीला प्रतिमा यश देने वाली, काष्ठ प्रतिमा काम प्रदायिनी, सुवर्ण की प्रतिमा भुक्ति और मुक्ति को देने वाली, चाँदी की प्रतिमा स्वर्ग देने वाली, ताम्र प्रतिमा आयुर्बल देने वाली, कांस्य प्रतिमा सर्वापदाओं को विनष्ट करने वाली, पीतल की प्रतिमा शत्रुनाश करने वाली, पत्थर की प्रतिमा ऐश्वर्य देने वाली, स्फटिक की प्रतिमा तेजोबल और मिट्टी की प्रतिमा सर्वविध सौख्य प्रदान करने वाली और कल्याणकारी होती है। छः अंगुल से बड़ी या यन्त्र में लिखी हुई प्रतिमा को प्रतिदिन स्नान नहीं कराना चाहिये। यथा-

प्रतिमा पट्टयन्त्राणां नित्यं स्नानं न कारयेत्।
कारयेत् पर्वदिवसे यदा वा मलधारणम् ॥

किन वर्णों को किस देवता की प्रतिमा को प्रतिष्ठित करने का अधिकार है, इसको पुराणों में वर्णित किया गया है। यथा-

चातुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्य सुखार्थिभिः ।
भैरवोऽपि चतुर्वर्णैरन्त्यजानां तथा मतः ॥
मातरः सर्वलोकैस्तु स्थाप्याः पूज्याः सुरोत्तमाः ।
लिंगं गृही यतिर्वापि संस्थाप्य तु यजेत्सदा ॥

(देवी पुराण)

सुख की इच्छावाले चारो वर्णों को विष्णु की पूजा करनी चाहिये। समस्त लोकों में श्रेष्ठ माताओं में भगवती दुर्गा व काली की पूजा करनी चाहिये। गृहस्थ और यति (सन्यासी) दोनों को शिवलिंग के पूजन का अधिकार है। विप्रों को पंचदेव उपासक होना चाहिये। अपने-अपने घरों में ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ को कितनी संख्या में विष्णु, शिव, शिवा, गणेश तथा सूर्य की प्रतिमा रखनी चाहिये। यथा-

गृहे लिंगद्वयं नार्च्य शालग्रामद्वयं तथा।
द्वे चक्रे द्वारकायास्तु नार्च्य सूर्यद्वयं तथा ॥

शक्तित्रयं तथा नार्च्य गणेशत्रयमेव च।
द्वौ शंखौ नार्चयेच्चैव भग्नां च प्रतिमां तथा ॥
नार्चयेच्च तथा मत्स्यः कूर्मादि दशकं तथा।
गृहेऽग्निदग्धा भग्नाश्च नार्च्याः पूज्या वसुन्धरा ॥
एतासां पूजनान्नित्यमुद्वेगं प्राप्नुयाद् गृही।
शालग्रामः समाः पूज्याः समेषुद्वितयं न हि ॥
विषमा नैव पूज्यास्तु विषमेष्वेक एव हि।
शालग्रामशिलाभग्ना पूजनीया सचक्रका।
खण्डिता स्फुटिता वापि शालग्रामशिलाशुभा ॥

(पद्म पुराण)

हे वसुन्धरे! घर में दो शिवलिंग, दो शालग्राम, दो द्वारका चक्र, दो सूर्य, तीन शक्ति, तीन गणेश, दो खण्डित शंख और मत्स्य कूर्मादि दशों अवतारों की प्रतिमाओं का तथा अग्नि से जली या टूटी प्रतिमा का पूजन नहीं करना चाहिये। इस तरह की प्रतिमाओं के पूजन से गृहस्थ नित्य ही संकट में रहता है।

शालग्राम का सम (चार, छः) रूप में पूजन करना चाहिये किन्तु समरूप में दो शालग्राम का पूजन नहीं करना चाहिये। द्वारका चक्र के सहित शालग्राम टूटी भी हो तो उसकी पूजा करनी चाहिये कारण कि शालग्राम टूटी अथवा खण्डित भी शुभ है। ग्रन्थान्तर में स्पष्ट है कि–

एका मूर्तिर्न पूज्यैव गृहिणा स्वेष्टमिच्छता ।
अनेकमूर्तिसम्पन्नः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥

कल्याण चाहने वाला गृहस्थ एक मूर्ति की पूजा न करे। अनेक मूर्ति का पूजन करने वाला सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करता है। शिवलिंग के पूजन का अधिकारी सभी जातियों एवं स्त्रियों को कहा गया है–

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा प्रतिलोमजः ।
पूजयेत् सततं लिंगं तत्तन्मन्त्रेण सादरम् ॥
किं बहूक्तेन मुनयः स्त्रीणामपि तथान्यतः ।
अधिकारोऽस्ति सर्वेषां शिवलिंगार्चने द्विजाः ॥

(शिव महापुराण)

सूत जी कहते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा वर्णसंकर कोई भी क्यों न हो वह अपने अधिकार के अनुसार वैदिक अथवा लौकिक विधि से सदा आदर पूर्वक शिवलिंग की पूजा कर सकता है। विशेषकर स्त्रियों को कौन से लिंग का पूजन करना चाहिये जिससे उनका कल्याण हो–

स्त्रीणां सुपार्थिवं लिंगं सभर्तृणां विशेषतः ।
विधवानां निवृत्तानां रसलिंगं विशिष्यते।
विधवानां प्रवृत्तानां स्फाटिकं परिकीर्तितम् ॥

(शिव महापुराण)

स्त्रियों को पार्थिव लिंग का पूजन करना चाहिये और सौभाग्यवती स्त्रियों को तो अवश्य ही पार्थिव पूजन करना चाहिये। जो विधवा स्त्री संसार से विरक्त हो उसको रसलिंग (पारद लिंग) का पूजन श्रेयस्कर है और जो विधवा स्त्री सांसारिकता में आसक्त हो उन्हें स्फटिक लिंग का पूजन करना चाहिये। स्त्रियों को शिवार्चन में 'शिवाय नमः' इस मत्र का जप करने का विधान है–

नमोन्तेन शिवेनैव स्त्रीणां पूजा विधीयते।
विरक्तानां तु शूद्राणामेवं पूजा प्रकीर्तिता ॥

(शिव महापुराण)

जिस काल परिस्थिति में वर्णव्यवस्था, खान–पान, आचार–विचार नहीं होता है वहाँ किसी भी प्रकार के किये गये कर्मों का फल शास्त्रदृष्टि से नगण्य होता है। मनु ने कर्म प्रधान देश का निर्णय किया है–

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशः म्लेच्छदेशस्तु तत्परः ॥

(मनुस्मृति २/२३)

जिस राष्ट्र में कृष्णसार (काला मृग) स्वभावतः विचरण करता हो वह यज्ञप्रधान देश है और जिस देश में ऐसी बात नहीं उसे म्लेच्छ देश कहते हैं। किन्तु दुःख की बात है कि इस भारतवर्ष में कृष्णसार की संख्या दिन–प्रतिदिन न्यून होती जा रही है। यदि इस पर सरकार ध्यान नहीं देगी तो भविष्य में कृष्णसार की प्रजाति समाप्त हो जायेगी और जहाँ कृष्णसार नहीं हैं वह देश म्लेच्छ की संज्ञा में आता है।

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥

पूर्व समय में सम्पूर्ण विश्व कर्म प्रधान था और सभी जगह हिन्दुत्व का बोलबाला था किन्तु आज भारतवर्ष में ही हिन्दुओं, मन्दिरों, गौओं की मर्यादा नष्ट हो रही है। भारतवर्ष में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध क्यों न हो प्राणिमात्र भारतमाता की सन्तति है।

■

ताम्बूल (पान) की उत्पत्ति और उसके उपयोग से राजा दम्भ का शक्तिहीन हो जाना

*आचार्य नवनीत

ताम्बूल (पान) की उत्पत्ति – प्राचीन काल की बात है, देवताओं ने समुद्र से मन्थनद्वारा अमृत प्राप्त करके उसे नन्दनवन में रखा। वहीं ऐरावत हाथी के बाँधनेका खम्भा भी था। नागराज ऐरावत रात–दिन उस अमृतकी दिव्य सुगन्ध लेता रहता था। एक समय उस अमृत–कलश से एक लता प्रकट हुई और वह फैलती हुई नागराज ऐरावत के आलान (बाँधने के खम्भे) पर चढ़ गयी। देवता लोग उस अपूर्व सुगन्धित लता के पत्र तोड़कर मुखशुद्धिके लिये खाते थे और खाकर बड़े प्रसन्न होते थे। तदनन्तर धन्वन्तरि वैद्य ने उसे देखकर कहा–'यह नाग (हाथी) के आलान पर फैली है, इसलिये नागवल्ली के नाम से प्रसिद्ध होगी और मेरे वचन से यह सदा कामदेव का स्थान (उद्दीपन करनेवाली) होगी।' तत्पश्चात उन्होंने उसके साथ सुपारी चूना और कत्थे का संयोग करके उसके द्वारा इन्द्रदेवता को तृप्त किया।

ताम्बूल (पान) का पृथ्वी पर आना – तब इन्द्र ने कहा! राजन वर माँगो। धन्वन्तरि ने कहा– यह नागवल्ली (पान)कृपा करके मुझे भी दीजिये, मर्त्यलोक में इसका प्रचार हो। 'तथास्तु' कहकर इन्द्र ने नागवल्ली (पान की बेल) उन्हें दे दी। अपने नगर में जाकर उसे उद्यान में आरोपित किया। तदनन्तर शीघ्र ही उसका सब ओर प्रचार हो गया।

चूर्णपत्र (सुर्ती) खाने से दोष क्यों होता है – जब से ताम्बूल मृत्यु लोक में आया उसे खा–खाकर मनुष्य काम–भोग में आसक्त हो गये। कोई भी यज्ञ आदि सत्कर्म न तो करता था और न कराता ही था। समस्त धार्मिक क्रियाएँ लुप्त हो गयीं। देववृन्द यज्ञभाग से वंचित हो गये और क्षुधा से पीड़ित हो ब्रह्मा जी के समीप जाकर बोले–'सुरश्रेष्ठ ! मर्त्यलोक में समस्त धर्मकार्य बंद हो गये। सारा जगत् ताम्बूल भक्षण करके कामासक्त होता जा रहा है। अतः हमलोगों पर कृपा कीजिये, जिससे हमारा यज्ञकार्य नष्ट न होने पावे।' इसी समय ब्रह्माजी यज्ञ के लिये पुष्करतीर्थ में आये। उस समय दारिद्र्य ने उनके पास जा प्रणाम करके विनयपूर्वक कहा– 'देव ! मैं तो ब्राह्मणों के घर में रहकर उपवास करते–करते ऊब गया हूँ, अब कोई धनवानों का अच्छा–सा घर मेरे रहने के लिये बताइये, जहाँ खूब पेट भरकर भोजन मिले और सदा तृप्ति बनी रहे।' उसका वचन सुनकर ब्रह्माजी ने देर तक सोच–विचारकर कहा–'दारिद्र्य! तुम्हें चूर्णपत्र (सुर्ती)–में सदा निवास करना चाहिये। ताम्बूल के पत्तेके अग्रभाग में पत्नी के साथ रहो तथा वृन्त में पुत्र के साथ निवास करो। रात होने पर तुम तीनों कत्थे में निवास करना।' इस प्रकार धनवानों के यहाँ छिद्र उत्पन्न करने के लिये दरिद्रता को ये चार स्थान दिये गये हैं। राजन् ! राजा दम्भ ने न जानने के कारण उन सब दोषों से युक्त पान खा लिये थे, इसीलिये उन्हें सहसा ऐश्वर्य से हाथ धोना पड़ा था।

ताम्बूल (पान) का अग्र भाग और पीछे का भाग क्यों तोड़ा जाता है –दारिद्र्य ताम्बूल के पत्ते के अग्रभाग में पत्नी के साथ तथा वृन्त (डंठल) में पुत्र के साथ निवास करता है । पान न खाना सर्वोत्तम है। दोष से बचकर खाना हो तो, पानमें सुर्ती तो कभी

डाले ही नहीं, क्योंकि उसमें सदा दारिद्र्य का वास है। देखा भी जाता है शूद्र और दंभी लोग ही अधिक सुर्ती खाने वाले हैं। रात में भी पान न खाये, क्योंकि कत्थे में उस समय दारिद्र्य का वास है। पान के पत्ते का अग्रभाग और डंठल तोड़कर केवल दिन में बिना सुर्ती का पान देवता को अर्पण करके खाने में दोष नहीं है इसी से पान का डंठल और अगला भाग तोड़ने की प्रथा है

ताम्बूल खाने से राजा दम्भ को कुष्ठ रोग हो जाना –पूर्व समय की बात है एक आनर्त्त देश के स्वामी सिद्धसेन नारद जी से मिले जो पूर्वकाल में 'दम्भ' नाम से प्रसिद्ध राजा इस देश के शासक थे। उनके कोई पुत्र नहीं था। एक दिन ऐसा आया, जब वे सहसा कुष्ठरोग से ग्रस्त हो गये। इसी समय अनेक शत्रुओं ने भी उन पर धावा कर दिया। उनका राज्य छिन गया और वे रैवतक पर्वत पर चले गये। वहाँ जाने पर भी चोर और बटमार उन्हें सदा सब ओर से पीड़ा देने लगे। जब हाथी, घोड़े, रथ और खजाने सभी लुट गये, तब वे मन–ही–मन इस चिन्ता में पड़े कि अब मैं क्या करूँ? 'यही सब सोचते– विचारते हुए वे देवर्षि नारदजी का दर्शन करने के लिये गये। उस दिन एकादशी तिथि थी। नारदजी तीर्थयात्रा के प्रसंग से भगवान् दामोदर का दर्शन करने के निमित्त वहाँ आये थे। राजा दम्भने उनके समीप जा चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम किया और हाथ जोड दीन भाव से उनके आगे बैठकर कहा– मुनिश्रेष्ठ ! मैं सब ओर से शत्रुओं द्वारा सताया गया, अतः राज्य छोडकर रैवतक पर्वत पर चला आया। वन में आने पर भी मुझे राहत न मिली। पापी लुटेरों ने सब ओर से मुझे पीड़ा दी और मेरे पास जो कुछ भी हाथी, घोड़े, रथ, खजाना आदि वस्तुएँ तथा स्त्रियाँ थीं, उन सबको लूट लिया। इन सब कष्टों के कारण मेरे मनमें 'इस जीवन से वैराग्य हो गया है। मुने! दूसरे जन्मों में मैंने कौन–सा ऐसा भयंकर पाप किया है, जिससे सहसा मुझे इस दुर्दशा की प्राप्ति हुई है?'

नारदजी ने दिव्य दृष्टि से सब वृत्तान्त जान लिया और इस प्रकार कहा–महाराज ! पूर्व शरीर में तुमने कोई कुकर्म नहीं किया है। मैंने दिव्य दृष्टि से तुम्हारे पूर्व–जन्म का सब हाल जान लिया है।

दम्भ बोले– प्रभो ! यदि पूर्वजन्म में मैंने पाप नहीं किया है, तो इस जन्म में कोई पाप किया हो, यह याद नहीं आता। फिर क्या कारण है कि सहसा मेरा राज्य छिन गया। इस समय मुझे इस बात का भलीभाँति अनुभव हो गया है कि संसार में धन–वैभव से रहित मनुष्य का जीवन व्यर्थ हो जाता है। जिसकी लक्ष्मी चली गयी, वह मनुष्य मानो मर गया। जहाँ कोई राजा नहीं है, वह राज्य भी मरे हुए के ही समान है। जो दान वेद के विद्वान् को नहीं दिया गया है, वह नष्टप्राय है तथा जिसमें दक्षिणा नहीं दी गयी हो, वह यज्ञ भी नष्ट ही है। जब मनुष्य का धन नष्ट हो जाता है, तब उसके भाई–बन्धु भी पराये हो जाते हैं। 'कहीं यह मुझसे द्रव्य न माँगने लगें' इस भय से उसे देखकर दूसरी ओर मुड़ जाते हैं। जैसे इस समय लोग मुझे देखकर मुँह मोड़ लेते हैं। ब्रह्मन् ! जिन्हें मैंने भलीभाँति धन देकर तृप्त किया है, वे भी मुझे देखकर बहुत दूर खिसक जाते हैं कि यह मुझसे कुछ माँग न बैठे। जैसे पक्षी सूखे वृक्ष को छोड़कर चल देते हैं, उसी प्रकार निर्धन अवस्था में उत्तम प्रकृतिके कुलीन उत्तम मनुष्य को भी देखकर स्वजन भी दूसरी

ओर चले जाते हैं। दरिद्र मनुष्य उस धनी का ही कार्य करने के लिये उसके घर आता हो तो भी धनी लोग उसे फटकार देते हैं और उसके पास नहीं जाते। परंतु दूसरा धनाढ्य मनुष्य उसके समीप कुछ माँगने के लिये आता हो, तो भी मनुष्य के चित्त में यही भाव पैदा होता है कि यह मुझे कुछ देगा। इस संसार में धनियों के आगे खड़े होकर लोग प्रायः यह कहते हैं कि 'हम और आप तो पहले से ही एक कुल के हैं, आपके पिताजी मेरे पिता पर सदा ही बड़ा स्नेह रखते थे।' कुलीन मनुष्य भी धन के लोभ से पापियों के यहाँ उपस्थित देखे जाते हैं। ये काम और क्रोध दो प्रकार के मनुष्यों के लिये अत्यन्त कड़वे और तीक्ष्ण दोष हैं, तथा शरीर के शत्रु हैं- एक तो उस मनुष्य के लिये जो निर्धन होकर भी कामना करता है और दूसरे उसके लिये जो असमर्थ होकर भी क्रोध करता है। धन के लोभी मनुष्य रात में श्मशान का भी सेवन करते हैं और पिता को भी छोड़कर बहुत दूर चले जाते हैं। जिसके घर में धन है, वह अत्यन्त मूर्ख हो तो भी विद्वान् माना जाता है, कुलीन न हो तो भी उत्तमकुल में उत्पन्न कहा जाता है। इसके विपरीत धन न रहने पर कुलीन भी अकुलीन और विद्वान् भी मूर्ख माना जाता है। इसलिये मुनिश्रेष्ठ ! मुझे इस जीवन से वैराग्य हो गया है। मैं दरिद्र हूँ, कोढ़ी हूँ और शत्रुओं से अपमानित भी हो चुका हूँ, यदि कोई पूर्वपाप नहीं है, तो यह सब कष्ट मुझे किस कारण से प्राप्त हुआ है? यह बताइये।

राजा का यह वचन सुनकर नारदजी ने बहुत देर तक सोच-विचारकर कहा- राजा सिद्धसेन (दम्भ) वैशाख शुक्ला अष्टमी एवं रविवार का उत्तम योग आने पर शंखतीर्थ में गये और सूर्योदय के समय उसमें स्नान करके ज्यों ही सूर्यदेवका पूजन करने लगे, उसी समय कुष्ठरोग से मुक्त हो गये। तब दिव्य शरीर पाकर उनके मन में बड़ा सन्तोष हुआ। तब उन्हें अपने पूर्व जन्म की भूल याद आई।।

तदनन्तर उन से पूर्वकाल में जो एक भूल हुई थी उसका प्रायश्चित्त किया। भूल यह हुई थी कि उन्होंने किसी समय चूर्णपत्र (सूर्ती) के साथ ताम्बूल पान भक्षण कर लिया था, उसी का यह फल था कि उनपर कष्टपूर्ण दशा आयी थी। प्रायश्चित्त करने पर वे उत्तम लक्ष्मी को प्राप्त हुए और पहले की ही भाँति पिता-पितामहों के राज्यका शासन करने लगे।

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि ।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ।।७।।

अर्थात् कहा गया है की पानी में तेल, दुष्ट व्यक्ति को बताई गई गुप्त बात, योग्य पात्र को दिया गया दान और ज्ञानी व्यक्ति को दिया गया शास्त्रज्ञान - ये सभी अपनी प्रकृति के कारण (वस्तुशक्तितः) अपने आप फैल जाते हैं, भले ही वे कम ही क्यों ना दिए गए हो ।

■

श्री गोरखनाथ मन्दिर के प्रकाशन

1.	गोरखदर्शन	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	150.00
2.	महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ	डॉ. भगवती प्रसाद सिंह	80.00
3.	नाथ योग	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	10.00
4.	आदर्श योगी	रघुनाथ शुक्ल	40.00
5.	महायोगी गुरु गोरखनाथ एवं उनकी तपस्थली	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
6.	गोरखबानी	रामलाल श्रीवास्तव	110.00
7.	गोरक्षसिद्धान्त संग्रह	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
8.	श्री गोरक्ष वैदिक पूजा पद्धति	वेदाचार्य रामानुज त्रिपाठी	8.00
9.	अमनस्क योग	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
10.	गोरक्ष पद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
11.	विवेक मार्तण्ड		7.00
12.	महार्थ मंजरी		6.00
13.	गोरखचरित्र	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
14.	हठयोग प्रदीपिका	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
15.	सिद्धसिद्धान्तपद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	25.00
16.	योग रहस्य	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	25.00
17.	योग बीज	रामलाल श्रीवास्तव	6.00
18.	शाबर चिंतामणि	नित्यनाथ सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ	7.00
19.	योगी सम्प्रदाय (नित्कर्म संचय)		90.00
20.	गोरख चालीसा		2.00
21.	नाथसिद्ध चरितामृत	रामलाल श्रीवास्तव	70.00
22.	नाथ पंथ गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में	विष्णुदत्त कुकरेती	30.00
23.	अमरकाया महायोगी गोरखनाथ	श्रीमती माया देवी	10.00
24.	युगपुरुष महन्त दिग्विजयनाथ ने कहा था	महन्त योगी आदित्यनाथ	12.00
25.	गोरखनाथ और नाथसिद्ध	डॉ. अनुज प्रताप सिंह	130.00
26.	गोरक्षदर्शन	विजय पाल सिंह	40.00
27.	तन प्रकाश	श्री श्री 108 बाबा चुन्नीनाथ जी	20.00
28.	हठयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	100.00
29.	यौगिक षट्कर्म	महन्त योगी आदित्यनाथ	21.00
30.	नाथ सिद्धों का तात्त्विक विवेचन	अनुज प्रताप सिंह	70.00
31.	गोरखमहिमा	महेन्द्र नाथ गोस्वामी	30.00
32.	सुभाषित त्रिशती	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
33.	राष्ट्रीयता के अनन्य साधक महन्त अवेद्यनाथ (3 खण्ड)	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	1100.00
34.	राजयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	100.00
35.	Philosophy of Gorakhnath	A.K. Banerjee	175.00
36.	The Nath-Yogi Sampradaya and The Gorakhnath Temple		3.50
37.	An Introduction to Nath-Yoga	A.K. Banerjee	15.00
38	महन्त अवेद्यनाथ स्मृति ग्रन्थ	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	600.00
39	योगिराज बाबा गम्भीरनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	500.00
40	योग एवं महायोगी गोरखनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	175.00
41	महायोगी गुरु श्रीगोरखनाथ		40.00
42	श्रीगोरखनाथ मन्दिर एवं गोरखपुर का इतिहास		40.00
43	योगिराज बाबा गम्भीरनाथ		40.00
44	युगद्रष्टा महन्त दिग्विजयनाथ		50.00
45	राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ		50.00

ए.पी./जी.आर-125/14 ए.पी./29075/76

तुलसी
एक जीवनदायक पौधा

तुलसी का हिंदू-संस्कृति में अत्यधिक धार्मिक महत्त्व है-इस रूपमें तुलसी की पूजा की जाती है। तुलसी का हमारे ओषधिशास्त्र से भी अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। लगभग सभी रोगों में अनुपान-भेद और मिश्रण के साथ इसका प्रयोग किया जा सकता है। तुलसी या मकरध्वज आयुर्वेद-जगत में प्रत्येक रोग में काम आने वाली ओषधियों में प्रमुख है, जिसकी प्रयोग विधि जान लेने से वैद्य संसार के लगभग सभी रोगों से लड़ सकता है। विष्णुपुराण, ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण, देवीभागवत आदि के अनुसार तुलसी की उत्पत्ति की अनेक कथाएँ हैं, पर एक कथा के अनुसार समुद्र-मन्थन करते समय जब अमृत निकला तब कलश को देखकर श्रम की सार्थकता से अभिभूत होकर देवताओं के नेत्रों से अश्रुस्त्राव हो उठा और उन बूँदों से तुलसी उत्पन्न हुई। तुलसी को अंतर्राष्ट्रीय जगत में ओसिमम सेंक्टम् (Ocimum Sanctum) के नाम से जाना जाता है, जिसके बाईस भेद हैं; किंतु मुख्यतया यह कृष्ण-तुलसी, श्वेत-तुलसी, गन्धा-तुलसी, राम-तुलसी, वन-तुलसी, बिल्वगन्ध-तुलसी, बर्बरी-तुलसीके नामसे जानी जाती है।

तुलसी को सर्वरोग-संहारक-प्रवृत्ति के कारण ही घर में घरेलू वस्तु की श्रेणी में रखा गया है। इसकी गन्ध से मलेरिया के मच्छर दूर भाग जाते हैं। तुलसी के पौधे में प्रबल विद्युत-शक्ति होती है, जो पौधे के चारों ओर दो सौ गज तक रहती है। आयुर्वेद के मत से तुलसी का कटु-तिक्त रस हृदयग्राही और पित्तनाशक है। यह कुष्ठ, पथरी, रक्तदोष, पसलियों के दर्द, चर्मरोग, कफ और वायुजनित रोगों का नाशक है। कृष्ण और शुक्ल दोनों तुलसी के गुण समान हैं। तुलसी-काष्ठ धारण करने से शरीर की विद्युत-शक्ति नष्ट नहीं होती, इसी कारण उसकी माला पहनने का प्रचलन है।

तुलसी के अनेक तान्त्रिक प्रयोग हैं। उनमेंसे प्रमुख ये हैं- यदि किसीने किसी पर मोहन-प्रयोग किया हो तो पीड़ित व्यक्तिको तुलसी-मञ्जरी को घी या शहदमें डुबोकर श्रीकृष्ण-मन्त्रोंसे आहुति देनी चाहिये। रविवार को पुष्य-नक्षत्र में तुलसी की जड़ उखाड़कर चूर्ण बनाकर रख लें, फिर एक माशा तक समान मात्रा में असगंध (अश्वगंधा)-के चूर्ण के साथ मिलाकर रात्रिमें दूध के साथ सेवन करें तो यह शुक्र सम्बन्धी एवं शीघ्र पतन जैसी बीमारियों को समूल नष्ट कर देगा। राजवशीकरण में भी तुलसी का प्रयोग बताया गया है।

(डॉ० श्रीकमलप्रकाशजी अग्रवाल)

प्रकाशक :
गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर-२७३०१५
web: www.gorakhnathmandir.in | E-mail: gorakhnathmandir@yahoo.com
दूरभाष: (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४, फैक्स: ०५५१-२२५५४५५